भाग—२

हिन्दी माधुरी

भाग—२

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा,

मद्रास

 १९४९ [१—०—०

दो बातें

दक्षिण भारत के सैकड़ों हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी भाषा की निचली सीढ़ी को पार कर लिया है और अब उनमें उच्च साहित्यिक लेखों के पढ़ने की अभिरुचि और लगन उत्पन्न हो गयी है। वे चाहते हैं कि उनके सामने अब हिन्दी संसार के उच्च लेखकों की कृतियाँ और भिन्न-भिन्न शैलियाँ रखी जायँ। इसी दृष्टिकोण को मद्दे नज़र रखते हुए "हिन्दी माधुरी" भाग—१ हम कुछ समय पूर्व अपने हिन्दी प्रेमी पाठकों के सामने रख चुके हैं। यह उसी 'हिन्दी माधुरी' का द्वितीय भाग है। इसमें लेखों की शैली और भाषा पहले भाग की अपेक्षा अधिक ऊँचे दरजे की मिलेगी। इसके लेखों का चयन "प्रवेशिका परीक्षा" के स्टेण्डर्ड को ध्यान में रखकर किया गया है।

इस किताब में जो लेख और निबंध दिये गये हैं उनमें इस बात का ध्यान रखा गया है कि हिन्दी क्षेत्र में प्रयोग किये जाने-वाले विभिन्न विषयों की शब्दावली का भी पाठकों को बोध होता जाय। राजनीतिक, सामाजिक, व्यापारिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, शिकार संबंधी आदि विभिन्न विषयों पर लेख दिये गये हैं। लेखों के पढ़ने में पाठकों का औत्सुक्य बढ़े, इसका भी ध्यान रखा गया है।

अन्त में उन सहृदय लेखकों के प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हैं, जिनकी कृतियों से हमने लाभ उठाया है।

—प्रकाशक

विषय-सूची

मृत्यु का भय

[इस लेख के लेखक हैं **महात्मा गान्धी**। महात्माजी की मातृभाषा है गुजराती। लेकिन हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में आपका बड़ा हाथ है। आप ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के संस्थापक और दक्षिण में हिन्दी प्रचार के जन्मदाता हैं।]

स्वराज्य की बहुतसी व्याख्याएँ मैं एकत्र कर रहा हूँ। उनमें एक व्याख्या यह भी है—मृत्यु के भय का त्याग। जिस देश के लोग मौत के डर से घबराये रहते हैं, वह न तो स्वराज्य प्राप्त कर सकता है और न उसे संभाल ही सकता है! अंग्रेज़ लोग तो मौत को जेब में लिये घूमते हैं, अरबी और काबुली मरण को एक मामूली बीमारी समझते हैं। जब उनके यहाँ कोई मर जाता है तब वे रोते-पीटते नहीं। बोअर स्त्रियाँ तो जानती ही नहीं कि मरण-भय क्या चीज़ है। बोअर-युद्ध के समय हज़ारों बोअर युवतियाँ विधवा हो गयीं। पर उन्होंने इसकी कुछ परवाह न की। उन्होंने अपने दिल को समझाया कि "मेरे पति या पुत्र मर गये तो क्या हुआ, मेरे देश की इज़्ज़त तो क़ायम रही। यदि देश गुलाम हो जाता तो पति के रहने से भी क्या होता? अपने गुलाम बेटे की परवरिश करने की अपेक्षा तो उसकी लाश को क़ब्र में दफ़ना देना और उसकी आत्मा को याद करते रहना हज़ार दर्जे बेहतर है।" इस तरह धीरज रख-कर असंख्य बोअर-रमणियों ने अपने प्रियजनों को बिछुड़ने दिया।

बालक मरें, चाहे जवान या बूढ़े मरें, हम इससे भयभीत क्यों हों ? कोई पल ऐसा नहीं जाता जब इस जगत में कहीं किसी का जन्म और कहीं किसी की मृत्यु न होती हो। पैदा होने पर खुशियाँ मनाना और मौत से डरना बड़ी मूर्खता है। यह बात हमें अवश्य सदा अनुभव करनी चाहिए। जो लोग आत्मवादी हैं—और हममें कौन हिन्दू, मुसलमान या पारसी ऐसा होगा जो आत्मा के अस्तित्व को न मानता होगा ?—वे जानते हैं कि आत्मा कभी मरती नहीं। इस दशा में, जब कि जगत में उत्पत्ति और लय पल-पल पर होता ही रहता है, हम क्यों खुशियाँ मनावें ? और किसलिए शोक करें ? सारे देश को यदि हम अपना परिवार मानें और देश में जहाँ कहीं किसी का जन्म हुआ हो उसे अपने यहाँ ही हुआ मानें तो कितने जन्मोत्सव मनाइयेगा ? देश में जहाँ-जहाँ मौतें हों उन सब के लिए हम यदि रोते रहें तो हमारी आँखों के आँसू कभी बंद ही न हों। यह सोचकर हमें मृत्यु का डर छोड़ ही देना चाहिए।

और देश के लोगों की अपेक्षा प्रत्येक भारतवासी अधिक ज्ञानी, अधिक आत्मवादी होने का दावा करता है। तिस पर भी मौत के सामने जितने ही हम दीन हो जाते हैं उतने और लोग शायद ही होते हों। और उसमें भी मेरा ख्याल है कि हिन्दू-लोग जितने अधीर हो जाते हैं उतने भारत के दूसरे लोग नहीं। अपने यहाँ किसी का जन्म होते ही हमारे घरों में आनंद-मंगल उमड़ पड़ता है और जब कोई मर जाता है तब इतना रोना-पीटना मचता है कि आस-पास के लोग

भी हैरान हो जाते हैं। यदि हम स्वराज्य लेना चाहते हैं और अपने को उसके योग्य सिद्ध करना चाहते हैं तो हमें मृत्यु का भय बिलकुल छोड़ देना चाहिए।

इंग्लिस्तान की पाठशालाओं में आत्मशासन की शिक्षा

[लेखक राव बहादुर श्री लज्जाशंकर झा। आप एक गुजराती हैं। आपका जन्म सन् १८७९ में जबलपुर में हुआ था। मध्य प्रादेशिक शिक्षा-विभाग में आपका प्रमुख स्थान है। स्थानीय ट्रेनिंग कालेज के कुछ समय तक आप प्रिन्सिपल रह चुके हैं।) आपकी लिखी हुई 'साहित्य सरोज, शालोपयोगी पाठ्य-पुस्तकें' आदि बहुत उपयोगी हैं।]

इंग्लिस्तान में दो प्रकार की पाठशालाएँ होती हैं। एक तो पब्लिक स्कूल, जहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को बोर्डिंग-हाउस में रहन पड़ता है और जहाँ देश के नेता तैयार किये जाते हैं। दूसरे वे साधारण स्कूल होते हैं, जहाँ जनता के बालकों को शिक्षा दी जाती है। आत्मशासन की शिक्षा दोनों प्रकार की शालाओं में मिलती है। परन्तु पब्लिक स्कूल की शिक्षा-प्रणाली का अवलोकन करने से विशेष लाभ हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि यहाँ की पद्धति की पूरी-पूरी नक़ल की जाय, या देश काल-पात्र का विचार न किया जाय। उनमें से जो बातें हिन्दुस्तानी बालकों के लिए लाभकारी हों, उनका उपयोग करने में कोई दोष नहीं।

हाँ, पब्लिक स्कूल के सब विद्यार्थी हॉस्टलों में रहते हैं। मास्टर लोग भी सकुटुंब उनके साथ हॉस्टलों में ही रहते हैं। सब का खाना-पीना, खेल आदि नियत समय पर एक ही साथ होते हैं। जो समय पर न पहुँचा, वह रह जाता है, उससे फिर कोई प्रेम नहीं करता। यदि चाय पीने के समय कोई बालक सोता रहे तो उसकी चाय गयी, कोई बाट नहीं देखता। यदि रसोईदार को दया आयी, तो रसोईघर में बुलाकर भले ही एक प्याला पिला दे, परन्तु बाल-समाज में समय पर न आनेवाले का निरादर होता है। इस कारण प्रत्येक मनुष्य को समय का बहुत ख्याल रखना पड़ता है और यदि कोई आधे मिनट के लिये भी लेट हो गया, तो माफ़ी माँगकर और अनुमति लेकर भीतर आवेगा। भोजन की घंटी बजने पर पाँच मिनट के अन्दर सब आ जाते हैं और फिर भोजनालय का फाटक कहीं-कहीं बन्द कर दिया जाता है। जो बाहर रह गया, सो रह गया। इस कारण घण्टी बजते ही सब कमरों से दौड़ शुरू होती है, क्वचित् ही कोई देर करता हो या धीरे-धीरे आता हो।

शाला के प्रत्येक कार्य के लिए बाल अधिकारी नियत किये जाते हैं, जैसे—मॉनीटर, कप्तान, प्रीफ़ेक्ट, बरसार आदि। और बालकों को यह शिक्षा दी जाती है कि जिस प्रकार शिक्षकों की आज्ञा मानते हो, उसी प्रकार इन बाल अधिकारियों की भी आज्ञा मानो; क्योंकि वे उनके ही आदमी हैं और वे बाल-समाज के हित के लिए ही कार्य कर रहे हैं। एक हिन्दुस्तानी शिक्षक जो विलायत के एक स्कूल

में कुछ दिनों तक कार्य करते रहे थे, मुझे बतलाते थे कि एक समय किसी आवश्यक कार्य के लिए वे दो-तीन मिनट को बाहर गये। इतने ही में वहाँ के हेडमास्टर भ्रमण करते हुए आ पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि एक छोटा-सा बालक कमरे का पहरा दे रहा है और प्रत्येक बालक अपने काम में मग्न है। हेडमास्टर ने पूछा कि तुमको किसने पहरा देने को कहा। तब उसने उत्तर दिया कि "मास्टर साहब तो कुछ नहीं कह गये, परन्तु सर्व-सम्मति से मुझे कक्षा ने यह भार सौंपा है कि हिन्दुस्तानी सज्जन को यह कहने का मौक़ा न मिले कि अंग्रेज़ बालक तभी तक काम करते हैं, जब तक ऊपर अंकुश रहे। उनके सामने उत्पात मचाना उतना दूषित नहीं, जितना कि उनकी ग़ैरहाज़िरी में।" इतने ही में वे हिन्दुस्तानी सज्जन लौट आये और बालकों का आत्म-गौरव देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उस कक्षा के विद्यार्थियों की अवस्था दस-ग्यारह वर्ष से अधिक नहीं थी। अंग्रेज़ी स्कूलों में छोटे-मोटे बहुत से कार्य—जैसे झाड़ना, बटोरना, चिट्ठी बाँटना, घंटा बजाना आदि सब—बालक ही कर लेते हैं। इस कारण नौकर अधिक रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बोर्डिंग-हाउसों में प्रत्येक बालक को अपने जूते साफ़ करना, अपना पानी लाना, बिछौना उठाना आदि सब कार्य अपने हाथों से करने पड़ते हैं। शाही और लार्ड घराने के बच्चे भी सब काम अपने हाथों से करते हैं, निजी नौकर नहीं लाने पाते। कुछ बाल-अधिकारियों के हक़ बंधे हुए हैं। जैसे, उनके लिए दूसरे विद्यार्थी गरम

पानी आदि बाहर से ले आते हैं, उनके जूते भी साफ़ करते हैं। यह काम बहुधा नीची कक्षा के विद्यार्थी कर देते हैं। इस प्रथा को फ़ैगिंग (बेगार) कहते हैं, और अमीर से अमीर घराने के लड़के को भी बाल-अधिकारियों के लिए यह काम करना पड़ता है। सुनते हैं कि जब "ईटन" की शाला में प्रिंस-ऑफ़-वेल्स पढ़ने गये, तो उनसे भी बेगार करायी गयी और उन्होंने खुशी से की।

जिस प्रकार जनता में एक प्रकार का संगठन है और भले बुरे कामों की टीका होती है, उसी प्रकार स्कूलों का बाल-समाज प्रत्येक व्यक्ति के आचरण पर कड़ी निगाह रखता है। अनुचित या नीच कार्य होने पर शिक्षकों को कुछ नहीं कहना पड़ता। बालकगण आपस में समझ-बूझ लेते हैं। यदि कोई बालक शिक्षक से झूठा बहाना कर छुट्टी ले जाय, तो कक्षा में कोई कुछ न कहेगा; परन्तु बोर्डिंग में आने पर उनके साथी झूठ बोलनेवाले की मरम्मत कर देते हैं। मास्टर को खबर भी नहीं होती कि कौन झूठ बोल गया; परन्तु बाल-समाज में उसकी कार्रवाई शुरू हो जाती है। शिक्षकगण केवल इतना ही देखते हैं कि बालकगण उच्च आदर्श लेकर अपना इन्तज़ाम खुद रक्खे।

कोई बालक कच्चे मन का या नामर्द न रहने पाये इसपर भी बाल-समाज का विशेष लक्ष्य रहता है। यहाँ तक देखा गया है कि जब कोई बालक प्रथम बार शाला में आया, तब उसकी परीक्षा ली जाती है। चार बड़े लड़के एक कंबल के चारों किनारे पकड़कर

नवीन बालक को कंबल पर ज़बरदस्ती लिटा उछालना शुरू कर देते हैं और छत से टकरा देने की चेष्टा करते हैं। यदि बालक चिल्लावे नहीं, अथवा हाय-तोबा न मचावे, तो इस परीक्षा में पास समझा जाता है। फिर कभी उसको पकड़कर आग के ऊपर सेंकते हैं; शर्त यह कि आग के चाहे जितने निकट जावे और उसको चाहे जितनी आँच लगे, वह आह न भरे। कभी ठण्ड के दिनों में सुबह के वक़्त पकड़कर ठण्डे पानी के हौज़ में गोते देते हैं। ऐसी कठिन परीक्षा में जो पास हो जाता है, उसका मान बाल-समाज में होने लगता है; क्योंकि वह मर्द है, डरपोक नहीं। परन्तु जो इसमें पास नहीं होता उसे अलग रखते हैं। उससे कोई बोलता नहीं, हर तरह से उसका तिरस्कार करते हैं। इन कारणों से, आपत्ति आने पर, क्वचित् ही अंग्रेज़ बालक दूसरे के सामने आँसू ढालता अथवा चिल्ल-पों मचाता हो। इस प्रकार बाल-समाज ही प्रत्येक बालक को निडर और वीर बनने की दीक्षा देता है।

इस प्रकार के दृश्यों का वर्णन सुनकर कदाचित् आप हाहाकार मचावेंगे और कहेंगे कि यह तो बड़ी भारी क्रूरता है, आख़िर मास्टर लोग करते क्या हैं? किन्तु मास्टर लोग तो बीच में बोलते ही नहीं; क्योंकि उनका उद्देश्य भी भावी जनता को वीर बनाने का ही है। हमारे देश में क्षत्रियों को इसी प्रकार की शिक्षा किसी समय दी जाती थी, तभी वे लोग वीरता तथा पराक्रम के आदर्श दिखलाकर दुनियाँ में नाम कमा गये हैं। अब ऐसा समय आया है कि केवल क्षत्रिय

को नहीं, वरन् सारी दुनियाँ को वीर और पराक्रमी बनाना आवश्यक है। दूध-दही से नहलाते रहने से अब काम नहीं चल सकता।

इंग्लिस्तान के बालकों को यह शिक्षा दी जाती है कि आपस के झगड़े आपस ही में तय करो, शिक्षकों के पास जाकर रोने-गाने से कोई लाभ नहीं। 'यदि कोई तुमको मारे, तो जवाब में मिश्र-व्याज सहित उसको मारो। पिट कर मत आओ, पीटकर आओ।' जो मार खाकर भाग जाता है, बाल-समाज में उसकी और भी दुर्दशा हो जाती है। उसके साथी बार-बार उत्तेजना देते हैं कि 'जाओ और फिर लड़ो, यदि फिर भी मार खाओ, तो फिर उद्योग करो, आततायी से हिम्मत न हारो, भिड़ते जाओ।' यही कारण है कि वहाँ का प्रत्येक बालक विपक्षी से मुक्केबाज़ी (Boxing) करने के लिए तैयार रहता है और अपने को हर तरह से बलवान तथा युद्ध में निपुण बनाने का उद्योग करता रहता है।

बालकों में संघ-बुद्धि इतनी प्रबल है कि यदि किसी छोटे और कमज़ोर लड़के पर कोई बलवान और धूर्त्त बालक आक्रमण करे, तो बड़े लड़कों में से कोई एक तो उसके बदले लड़ने को तैयार हो ही जायगा और जान लड़ाकर कमज़ोर बालक की रक्षा करेगा। परन्तु यदि समानावस्था के बालकों में मुठभेड़ हो; तो प्रत्येक को स्वावलम्बी होना पड़ता है। ज्योंही मुक्केबाज़ी शुरू हुई कि बाकी सब विद्यार्थी घेरकर खड़े हो जायँगे, ख़ूब लड़ने देंगे, बीच-बचाव न करेंगे, हारते हुए को उत्साह दिलायँगे; केवल यही देखेंगे कि नियमानुकूल युद्ध

हो रहा है कि नहीं। मुक्केबाज़ी के अन्त में सब मिलकर मरहम-पट्टी कर देंगे और फिर दोनों से आग्रह करेंगे कि हाथ मिलाकर फिर परस्पर मित्र हो जाओ। जहाँ हाथ मिलाया कि द्वेष काफ़ूर हुआ। बस, झगड़ा वहीं खतम हो जाता है। इतना सब होने पर भी क्या मजाल कि कोई विद्यार्थी जाकर अधिकारियों को ख़बर कर दे।

नियमबद्ध युद्ध का यह मतलब है कि यदि एक व्यक्ति मुक्के से लड़ता हो, दूसरा व्यक्ति लाठी या छुरे का प्रयोग न करे। केवल मुक्के से लड़े; जब कोई गिर जावे, तो फिर उस पर वार न करे, ऐसा करना अधर्म समझा जाता है। इतना ही नहीं, ऐसा युद्ध करनेवाले पर चारों तरफ़ से मार भी पड़ने लगती है। उसका वहाँ रहना मुश्किल हो जाता है।

एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी, जो लन्दन यूनिवर्सिटी में पढ़ता था, बतलाता था कि एक बार ठण्ड के दिनों में जब बर्फ़ पड़ रही थी, कुछ मनचले विद्यार्थी छप्पर पर चढ़ गये और बर्फ़ इकट्ठा कर चिमनियों में से भीतर डालने लगे। नतीजा यह हुआ कि कॉलेज के कमरों को गर्म रखने के लिए जो आग चिमनी के नीचे जलायी गयी थी, वह बुझ गयी और सर्दी के कारण कमरों में काम करना असम्भव हो गया। प्रोवोस्ट (Provost) ने नोटिस निकाली कि जो लोग ऊपर चढ़े थे, वे आकर अपना नाम लिखावें और अपनी सज़ा भुगतें। तहक़ीक़ात शुरू नहीं की गयी; क्योंकि वे जानते थे कि कोई भी दूसरे का नाम न बतलायेगा। नोटिस निकालते ही छप्पर चढ़नेवाले

और शैतानी करनेवाले विद्यार्थी प्रोवोस्ट के कमरे में पहुँचे और अपना नाम लिखा दिया। उन लोगों से पूछने पर हिन्दुस्तानी विद्यार्थी को मालूम हुआ कि उनका मत यह था कि जब हमको शैतानी सूझी, तब उपद्रव किया; अब जब सज़ा भुगतने का समय आया, तब हम क्यों मुँह छिपावें।

वही सज्जन एक दूसरी कथा सुनाते थे, जिससे कि वहाँ के विद्यार्थियों की दीक्षा का कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। दो विद्यार्थियों में किसी कारण मारपीट हो गयी। एक दूसरे पर दवातें फेंकी गयीं, पेपर-वेट फेंके गये, कुर्सियाँ फेंकी गयीं, और अन्त में लड़ाई ख़तम होने पर दोनों ने हाथ मिलाया और मित्र बन गये। मरहम-पट्टी के उपरान्त दोनों प्रोवोस्ट के कमरे में गये और रिपोर्ट की कि हम लोगों के कारण कुछ दवातें फूट गयी हैं। स्याही बिखरने के कारण दरी, गलीचे तथा दीवारें भी ख़राब हो गयी हैं, और कुछ कुर्सियाँ भी टूट गयी हैं, अतएव आप कृपाकर यह बतलावें कि कॉलेज को क्या नुकसान हुआ, हम लोग दाम देकर क्षति की पूर्ति कर देंगे। प्रोवोस्ट का बिल आते ही उन्होंने दाम चुका दिया। किसी ने यह झगड़ा न उठाया कि किसके हाथ से क्या टूटा, किसका क़सूर था अथवा किसने कौनसी चीज़ तोड़ी। वे सब प्रश्न आपस में तय कर लिये गये।

अंग्रेज़ी में एक शब्द है "डिसिप्लिन," जिसका पूर्ण अर्थ देनेवाला शब्द हिन्दी में नहीं मिलता। लेकिन इसके लिए कोई-कोई 'विनय' शब्द का उपयोग करते हैं। इसकी खूबी इंग्लैण्ड के

स्कूलों में विशेष करके देखी जाती है। "डिसिप्लिन" "संयोगात्मक बुद्धि" है जैसा कि अंग्रेज़ी सेना में ख़ास करके देखने में आता है। जहाँ कोई हुक्म दिया गया कि हज़ारों मनुष्य एक पल में, एक क़दम से, एक चित्त होकर आज्ञा-पालन में जुट जाते हैं। न कोई ढील-ढाल करता, न बहानेबाज़ी, न बातचीत। फ़ौजी मैन्यूवर्स में सब कार्य ऐसी सफ़ाई, निर्विघ्नता तथा शीघ्रता से होते हैं कि देखते ही बनता है। एक पल भी ख़राब नहीं होता। एक मनुष्य भी ख़राब नहीं होता। एक मनुष्य भी ढीला-ढीला नहीं चलता। मनुष्य की क्या, जानवर तक नियमबद्ध होकर चलते हैं। परेड पर जितने सिपाही या केम्प फॉलोअर (Camp-follower) नौकर-चाकर सामने से निकलेंगे, उनके क़दम तुले हुए, वेग तुला हुआ, पोशाक स्वच्छ और सटी हुई—न तनी, न बटन ढीला। हर एक मनुष्य अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ दीखता है। नतीजा यह होता है कि हज़ारों सिपाही, सैकड़ों सवार और पचासों तोपें और गाड़ियाँ यहाँ से वहाँ जाती हैं; पर न कोई किसी के रास्ते में पड़ता है, न कोई दुर्घटना ही होती है। परेड देखने से "डिसिप्लिन" के अर्थ का ज्ञान थोड़ा बहुत हो सकता है। इस कारण अंग्रेज़ी सेना ने, थोड़ी होने पर भी, प्रबल शत्रुओं का मुक़ाबिला सफलता-पूर्वक किया है।

फ़ौजी-शिक्षा का प्रभाव इंग्लैंड की पाठशालाओं में विशेषकर देखने में आता है। प्रत्येक पब्लिक स्कूल में एक कैडेट-कोर (Cadet Corps) रहता है, जिसके द्वारा बालकों को सैनिक शिक्षा

दी जाती है। इस शिक्षा के प्रभाव से छोटे बालकों के मन से बंदूक, तलवार अथवा बायोनेट (किरिच) का भय निकल जाता है; और सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उनके जीवन पर फ़ौजी "डिसिप्लिन" का बड़ा भारी प्रभाव पड़ जाता है।

इसी कारण, यदि दो-चार विद्यार्थी कहीं घूमने-फिरने जायँगे, तो प्रायः एक ही पोशाक में। वे एक लाइन में बराबर कदम से चलेंगे। उनके पैर जमकर वीरों के समान ज़मीन पर पड़ेंगे। छाती अकड़ी हुई और सिर ऊँचा रहेगा, मानो दुनियाँ में उनको कोई भय नहीं है। यदि एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाना हुआ, तो एक लाइन बनाकर ड्रिल के नियमों के अनुसार आवागमन शुरू हो जायगा। कक्षा में खड़े होंगे तो कसकर सीधे और शीघ्रता के साथ। यह क्वचित् ही देखने को मिलेगा कि अपनी डेस्क का सहारा लेकर और उसपर दोनों हाथ रखकर चौपायों के समान कोई बालक खड़ा होवे।

जब तक घण्टा नहीं बजता, तब तक अंग्रेज़ बालक बड़े चंचल और उपद्रवी होते हैं। कोई किसी से लड़ता है, कोई दूसरे पर निशाना लगा रहा है, कोई दूसरे को आलपीन चुभाकर भाग रहा है, कोई किसी की पाकेट में मेंढ़क छोड़ आता है। प्रायः सब इसी तरह धूम-धड़ाका मचाते हैं, मानों साक्षात् वानर-सेना आ गयी हो। परन्तु खूबी यह है कि घण्टा बजते ही उनमें एकदम परिवर्तन हो जाता है। वे एकदम लाइन बनाकर शीघ्रता के साथ अपने-अपने कमरों में जा पहुँचते हैं। यह सैनिक-शिक्षा का प्रभाव मालूम होता है।

अंग्रेज़ स्कूलों में पढ़ने-लिखने पर हिन्दुस्तान-सरीखा महत्त्व नहीं देते। शाला के बाहर शायद ही कोई बालक घण्टे डेढ़ घण्टे से अधिक काम करता हो। उनका बहुत-सा समय खेल-कूद, व्यायाम और आमोद-प्रमोद में जाता है। यदि कोई बालक पढ़ने में होशियार न हो तो कोई उसको बुरा नहीं समझता। परन्तु खेलों में तथा व्यायाम में जो नाम कमा ले, उसका मान बहुत होता है। कारण यह है कि अंग्रेज़ लोग शरीर-सम्पत्ति के संचय करने को विशेष महत्व समझते हैं। वे जानते हैं कि जो इसमें श्रेष्ठ रहेगा, सेना, पुलिस, कारख़ाने आदि में—जहाँ हुकूमत की और दूसरे मनुष्यों पर प्रभाव डालने की आवश्यकता होती है—वहाँ खिलाड़ी या पुरुषार्थी मनुष्य ही सफल होगा। उसे आपत्ति पड़ने पर तुरन्त सूझेगा कि क्या करना और क्या न करना चाहिए। पोथी-पंडित ऐसे समय में बेकाम निकलते हैं।

सहकारी खेलों से आत्मशासन की शिक्षा भी मिलती है, संयोगात्मक बुद्धि भी उत्पन्न होती है और ये सब गुण स्वतंत्र देश में लाभकारी होते हैं।

मच्छर

[ख़्वाजा हसन निज़ामी देहली के रहनेवाले हैं। आप उर्दू के एक अच्छे लेखक हैं। आपने १८५७ के ग़दर पर कई किताबें लिखी हैं। आपकी भाषा बहुत सरल और ज़ोरदार होती है।]

यह भिनभिनाता हुआ नन्हा-सा पंछी आपको बहुत सताता है, रात की नींद ख़राब कर देता है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी,—सब इससे नाराज़ हैं। हर रोज़ इससे लड़ने के लिए तैयारियाँ होती हैं, जंग के नक्शे बनाये जाते हैं, मगर मच्छरों के जनरेल के सामने किसी की नहीं चलती। हार पर हार होती चली जाती है।

इतने बड़े डीलडौल का आदमी ज़रा से भुनगे पर क़ाबू नहीं पा सकता! तरह-तरह के मसाले बनाता है कि इनकी बू से मच्छर भाग जाँय, मगर मच्छर अपने हमलों से बाज़ नहीं आते। आते हैं और शोर मचाते हुए आते हैं। बेचारा आदमी हैरान रह जाता है।

अमीर-ग़रीब, बड़ा-छोटा, औरत-मर्द कोई इसके हमले से महफ़ूज़ नहीं। यहाँ तक कि आदमी के पास रहनेवाले जानवर भी इसके जुल्म से नहीं बचते। मच्छर जानता है कि दुश्मन के दोस्त भी दुश्मन होते हैं। इन जानवरों ने मेरे दुश्मन से हार मान ली है, तो मैं इनको भी मज़ा चखाऊँगा। आदमियों ने मच्छरों के ख़िलाफ़ 'एजीटेशन' करने की पूरी-पूरी कोशिश की है। हर आदमी मच्छर पर कोई न कोई दोष लगाता है; मगर मच्छर ज़रा भी परवाह नहीं करता।

प्लेग फैली तो आदमी ने कहा—इसका कारण मच्छर और पिस्सू हैं। इन्हें मार डालो तो यह भयानक बीमारी दूर हो जायगी। मलेरिया फैला, तो इसका कारण मच्छर को बताया गया और इस सिरे से उस सिरे तक काले और गोरे आदमी शोर मचाने लगे कि मच्छरों को मिटा दो, मच्छरों को कुचल डालो, मच्छरों को मार दो। और फिर ऐसी तदबीरें निकालीं जिनसे मच्छरों का वंश ही मिट जाय।

मच्छर भी यह बातें देखता है और सुनता है और रात को डाक्टर साहब की मेज़ पर रखे हुए अंग्रेज़ी अख़बार 'पायोनियर' को पढ़ता है और उसमें छपे हुए अपनी बुराइयों के हर्फ़ों पर बैठकर उस पर ख़ून की नन्हीं-नन्हीं बूंदें डाल जाता है, जो आदमी की या खुद डाक्टर साहब की देह चूसकर लाया था। गोया अपनी भाषा में हम लोगों को शोख़ी से कहता है कि भाई, तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

आदमी कहता है—मच्छर बड़ा बुरा जीव है, गंदगी से पैदा होता है, और गंदी नालियों में रहता है और डरपोक इतना है कि हम पर उस समय हमला करता है जब हम सो जाते हैं। बेख़बरी में हमला करना बहादुरी नहीं, अव्वल दरजे की कमीनगी है। शक्ल तो देखो! काला भुनगा, लम्बे-लम्बे पाँव, बेडौल चेहरा, ऐसी देह और आदमी जैसे गोरे-चिट्टे ख़ूबसूरत प्यारे जीव से दुश्मनी! बेअक़्ली और मूर्खता इसी को कहते हैं।

मच्छर की सुनो, तो वह आदमी को खरी-खरी सुनाता है

और कहता है, "जनाब ! हिम्मत है तो सामना कीजिये। जात-पांत न देखिये, मैं छोटा सही, बदसूरत सही, काला और कमीना सही। मगर यह तो देखिये, आपका सामना किस दिलेरी से करता हूँ। और क्योंकर आपके नाक में दम करता हूँ। तुम कहते हो, मैं बेख़बरी में आता हूँ। यह भी तुम्हारी बेइन्साफ़ी है। जनाब, मैं तो पहले कान में आकर अलटीमेटम दे देता हूँ कि होशियार हो जाओ, अब हमला होता है। तुम आप ही सोते रहो, तो मेरा क्या क़सूर? दुनियाँ फ़ैसला करेगी कि जीत किसकी होती है, काले भुनगे, बेडौल, लम्बे पाँववाले की, या गोरे-चिट्टे आन-बानवाले की?

"मेरी बड़ाई की शायद तुमको ख़बर नहीं कि मैंने दुनियाँ में कैसे बड़े-बड़े काम किये हैं? तुम्हारा एक भाई नमरूद हुआ है जो अपने आपको ख़ुदा कहता था, और अपने सामने किसी को कुछ समझता ही न था। किसने उसका ग़रूर तोड़ा? कौन उसे ठीक करने को आगे बढ़ा? किसके कारण उसकी ख़ुदाई ख़ाक में मिल गयी? अगर आप न जानते हों, तो अपने ही किसी मुसलमान भाई से पूछ लीजिये। मेरे ही एक मच्छर भाई ने उस अभिमान के पुतले को तोड़ा-मरोड़ा था।

"और तुम तो ऐसे ही बिगड़ते हो, और मुझे अपना दुश्मन समझते हो। मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं हूँ। अगर तुम्हें यक़ीन न हो तो अपने किसी रात को जागनेवाले भगत भाई से पूछ लो। देखो, वह मेरे बारे में क्या कहता है? कल एक भगतजी अपने एक चेले

से कह रहे थे कि मच्छर की ज़िन्दगी मुझे तो बहुत पसन्द है। बेचारा दिन-भर अकेला पड़ा रहता है और रात को, जो भगवान के भजन का वक़्त है, बाहर निकलता है। और फिर सारी रात भजन करता है। आदमी पड़े सोते हैं, तो उसे उन पर गुस्सा आता है। वह चाहता है कि वह भी जागकर अपने मलिक के दिये हुए इस सुहावने चुपचाप वक़्त की कद्र करे और उसकी महिमा के गीत गाये। इसलिए पहले उसके कान में जाकर कहता है कि भाई उठो। जागने का समय है। सोने का और हमेशा सोने का समय अभी नहीं आया। जब आयेगा, तो बेफ़िक्र होकर सोना, अब तो होशियार रहने का और कुछ करने का वक़्त है। मगर आदमी इस सुरीली नसीहत की परवाह नहीं करता और सोता रहता है, तो वह गुस्से में आकर उसके मुँह और हाथ-पाँव पर काट खाता है। पर वाह रे भाई आदमी ! आँखें बन्द किये हुए हाथ-पाँव मारता है, और फिर सो जाता है। और जब दिन में जागता है, तो ग़रीब मच्छर को गालियाँ देता है कि रात भर सोने नहीं दिया। कोई इस झूठे से पूछे कि जनाब, कितने मिनट जागे थे जो सारी रात जागने की शिकायत हो रही है।

"भगतजी के मुँह से यह दानाई की बातें सुनकर मुझे भी तसल्ली हुई कि चलो इन लोगों में भी ऐसे इन्साफ़-पसन्द आदमी मौजूद हैं। बल्कि मैं दिल ही दिल में शरमाया कि कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि भगतजी बैठे माला फेर रहे हैं और मैं उनके पाँव का ख़ून पी रहा हूँ।—यह तो मेरी तारीफ़ करें, और मैं इन्हें

२

तकलीफ़ दूँ ! फिर दिल ने समझाया कि तू काटता थोड़े है, पाँव चूसता है, और ऐसे लोगों के पाँव चूमने ही के क़ाबिल होते हैं। मगर सच तो यह है कि इससे मेरी शर्मिन्दगी दूर नहीं हुई। अब तक दिल में इसका अफ़सोस है।

"बस, अगर सब आदमी ऐसा ही करें जैसा भगतजी ने किया, तो हमारी क़ौम आदमी को सताना अपने आप छोड़ देगी। वर्ना याद रहे कि मेरा नाम मच्छर है, आराम से जीने न दूँगा और बता दूँगा कि काले कमीने कमज़ोर भी ऊँचे दरजेवाले गोरे-चिट्टे आदमियों को हैरान और परेशान कर सकते हैं।"

अकबर की शासन-व्यवस्था

[**श्री जयचन्द्र विद्यालंकार** का जन्म सन् १९०३ ई० में प्रयाग में हुआ था। आप बड़े ही उत्साही कार्यकर्ता, गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक और गहन विद्वान हैं। "भारतीय इतिहास की रूप-रेखा" नामक एक अच्छी पुस्तक आपने लिखी है। पुरातत्त्व पर भी आप लिखा करते हैं। यह लेख आपके "इतिहास प्रवेश" नामक इतिहास से लिया गया है।]

अकबर की शासन नीति एक उदार राष्ट्रीय राजा की थी। अपनी हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को उसने एक ही दृष्टि से देखा। उसने पहले काश्मीर का ज़ैनुल आबिदीन, हुसैनशाह बंगाली और शेरशाह वैसी नीति के लिए रास्ता बना चुके थे।

अकबर ने सुशासन के लिए जो अनेक सुधार किये, उनमें मुख्य स्थान अर्थनीतिक सुधारों का है। उस अंश में उसने शेरशाह

का अनुसरण किया। गुजरात जैसे प्रान्त, जो शेरशाह के अधीन न हुए थे, वहाँ भी अकबर ने माप का बन्दोबस्त करवाया। टोडरमल इस कार्य में उसका मुख्य सहायक था। माप के लिए लंबाई और क्षेत्रफल की इकाइयों—गज़ और बीघा—का ठीक मान निश्चित किया गया। मालगुज़ारी-बन्दोबस्त से संबन्ध रखनेवाले तीन सुधार और थे। पहला, सरकारी कर्मचारियों को जागीर के बजाय नक़द वेतन देना, और जागीरों की ज़मीनों को भरसक "ख़ालसा" (राजकीय संपत्ति) बनाना। दूसरा, कुल कर्मचारियों की दर्जा-बन्दी करना। यह दर्जा-बन्दी बिलकुल सैनिक दृष्टि से की गयी थी; क्योंकि राज्य के सभी कर्मचारी सैनिक माने जाते थे। प्रत्येक कर्मचारी का पद और वेतन इस बात पर निर्भर होता था कि वह कितने सवारों का नायक है। सब कर्मचारी मनसबदार कहलाते थे और उनके मनसब १० से १० हज़ार तक होते थे। ये संख्याएँ उनके वास्तविक सवारों की नहीं, केवल उनकी हैसियत की सूचक होती थीं। तीसरा सुधार घोड़ों को दागने का था। उसका प्रयोजन था मनसबदारों को धोखा देने से रोकना।

१५८० ई० में अकबर के साम्राज्य में दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अवध, बिहार, बंगाल, अजमेर, गुजरात, मालवा, लाहौर, मुलतान और काबुल कुल १२ सूबे थे। पीछे काश्मीर जीत लिए जाने पर लाहौर काबुल में, सिन्ध मुलतान में और उड़ीसा बंगाल में मिलाये गये। दक्खिन विजय होने पर तीन नये सूबे बराड़, खान-

देश और अहमदनगर बने, जिससे कुल १५ सूबे हो गये। प्रत्येक सूबे का शासक सिपहसालार कहलाता था। बाद में वह सूबेदार कहलाने लगा। उसके साथ एक दीवान, एक बख़्शी (वेतन बाँटनेवाला), एक मीर आदिल (न्यायाधिकारी), एक सदर (धर्माधिकारी), एक मीर-बहर (मौर्य युग का नावाध्यक्ष)—यानी जहाज़ों, बन्दरगाहों, घाटों आदि का प्रबन्धक, एक वाक़यानवीस (मौर्य युग का प्रतिवेदक), और हर शहर में एक कोतवाल तथा हर सरकार में एक फ़ौजदार रहता था। केन्द्रीय शासन में सम्राट के नीचे एक वकील अर्थात् प्रधान मन्त्री, एक वज़ीर या दीवान, एक मीर बख़्शी और एक सदर-ए-सुदूर (मुख्य धर्माधिकारी) ये चार मुख्य तथा अनेक गौण अधिकारी रहते थे।

अकबर की सेना तीन तरह की थी। एक अधीन राजाओं की, दूसरी मनसबदारों की और तीसरी ख़ास अपनी। मुख्य सेना मनसबदारोंवाली थी। शेरशाह की तरह मुग़ल बादशाहों की स्थिर वैतनिक, सधी हुई सेना नहीं रही।

अकबर की धर्म संबन्धी नीति—अकबर स्वभाव से ही विचारशील था। उसके अन्दर सच्चाई की खोज की उत्कट चाह थी, जिसे ज़माने की लहर ने और पुष्ट कर दिया था। मुस्लिम बादशाह को इस्लाम की शरीयत के अनुसार चलना चाहिए। किन्तु इस्लाम में अनेक फ़िरके हैं, और किसके आदेश माने जायँ। इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर अकबर ने फतहपुर सीकरी में एक इबादत-ख़ाना

(प्रार्थना-गृह) बनवाया, जिसमें विभिन्न फ़िरकों के विद्वान् जमा होकर विचार कर सकें। शुरू में उसमें केवल मुस्लिम विद्वान् बुलाये गये थे। उनके परस्पर विवाद के ढंग से बादशाह का चित्त इस्लाम की तरफ़ से फिरने लगा। गुजरात की विजय-यात्रा से अकबर को पहले-पहल ईसाई, फ़ारसी और जैनमतों का परिचय मिला। उसके बाद उसके दरबार में शेख़ मुबारक नामक एक सूफ़ी तथा उसके दो बेटे अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी उपस्थित हुए। अकबर पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। तब इबादतख़ाने में इस्लाम के सिवा दूसरे मतों के विद्वान भी बुलाये जाने लगे। जब एक बार विचार से सचाई का निर्णय करने की नीति मान ली गयी, तब यह बात होनी ही थी। दूसरे, जब दीन के मुखिया आपस में झगड़ते और बादशाह उनके बीच मध्यस्थ बनता, तब मज़हबी मामलों में भी बादशाह की स्थिति उन सबसे ऊँची प्रकट होने लगी। १५७९ ई० में अकबर ने खुद साम्राज्य के प्रमुख इमाम की हैसियत से मसजिद के मिम्बर से खुतबा पढ़ा। तभी राज्य के प्रमुख उल्माओं के हस्ताक्षरों से यह घोषणा की गयी कि इमाम-ए-आदिल (प्रमुख इमाम) सब मुज़तहिदों (मज़हब के व्याख्याकारों) से बड़ा है, और विवादग्रस्त मामलों में उसका फ़ैसला सबको मान्य होगा, जो न माने उसे दण्ड देना उचित होगा।

इस घोषणा से कुछ मुसलमान भड़क उठे। वे अकबर के उन शासन-सुधारों से चिढ़े हुए थे, जो उसने जागीरदारों की जागीरें ज़ब्त करने और घोड़ों पर दाग़ लगाने आदि के संबन्ध में जारी

किये थे। उन्होंने बिहार और बंगाल में बलवा कर दिया, और अकबर के भाई मुहम्मद हकीम से मिलकर षड्यन्त्र रचा। जौनपुर के एक क़ाज़ी ने फ़तवा दे दिया कि अकबर के ख़िलाफ़ बलवा करना जायज़ है। अकबर ने बलवा दबाने के लिए टोडरमल को भेजा। उधर मुहम्मद हकीम फ़ौज के साथ पंजाब पर चढ़ आया। रोहतास के क़िलेदार ने उसे वह क़िला न दिया, और लाहौर के शासक कुँवर मानसिंह ने शहर के दरवाज़े न खोले। मुहम्मद हकीम की इस आशा पर कि सारी प्रजा उसका साथ देगी, पानी फिर गया और वह लस्टम-पस्टम पीछे भागा। अकबर ने बड़ी तैयारी के साथ काबुल पर चढ़ाई की। टोडरमल को बंगाल में सफलता हुई और बलवा पूरी तरह से कुचल दिया गया।

उसके बाद मज़हबी मामलों में अकबर को पूरी स्वतंत्रता मिल गयी। अब इबादतख़ाने की ज़रूरत न रह गयी थी। अकबर दूसरे धर्मों की तरफ़ झुकने लगा और उसने घोषणा कर दी कि उसके बेटे चाहे जो मज़हब मानें। जरथुस्त्रियों की तरह यह अपने घर में पवित्र आग रखने और सूर्य को प्रणाम करने लगा और जैनों और हिन्दुओं के प्रभाव से उसने गोहत्या की मुमानियत कर दी। विशेष अवसरों पर उसने कैदियों को छोड़ना शुरू किया, अपनी दाढ़ी मुँड़ा दी और माथे पर तिलक लगाने लगा। ईसाइयों का एक-पत्नीव्रत भी उसे भाया। इस प्रकार सब धर्मों का सामंजस्य कर अकबर ने एक व्यापक धर्म बनाने की कोशिश की। उसने लिखा, "एक

साम्राज्य में जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नहीं है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी विभिन्न मतों में बँटी रहे। इसलिए हमें उन सबको मिलाकर एक करना चाहिए; किन्तु इस प्रकार कि वे 'एक' भी हो जायँ और 'अनेक' भी बने रहें।"

अकबर ने अपने नये धर्म का नाम तौहीदे-इलाही रक्खा। उसका उद्देश्य अत्यन्त उदार और ऊँचा था, तो भी तौहीदे-इलाही सौ पन्थों को एक करने के बजाय एक नया पन्थ बन गया, और अकबर के साथ ही समाप्त भी हो गया। १५९३ ई० में अकबर ने धार्मिक स्वतंत्रता के लिए कई आज्ञाएँ निकालीं—(१) कोई ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया हिन्दू अगर फिर हिन्दू बनना चाहे तो उसे कोई न रोके; (२) किसी व्यक्ति को बाध्य कर दूसरे मज़हब में न लाया जाय; (३) प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्ममंदिर बनाने की स्वतंत्रता रहे; (४) अनिच्छुक हिन्दू विधवा को सती न किया जाय इत्यादि। अकबर की यह नीति अनेक मुल्लाओं को न रुची। उनके कट्टरपन से खीजकर पिछले जीवन में अकबर को इस्लाम का बहुत कुछ दमन भी करना पड़ा; परन्तु इस्लाम की सबसे मुख्य बात तौहीद अकबर के पन्थ में मौजूद थी।

अकबर के पिछले युद्ध और विजय—१५७६ ई० के बाद भी अकबर के दिल में दो तरफ़ साम्राज्य बढ़ाने की अभिलाषा थी, और यह उसके वंशजों को भी विरासत में मिली। एक तो वह उत्तर पच्छिम की तरफ़ बदख़्शां और बलख़ के आगे आमू पार तूरान

तक अपने पुरखों की भूमि लेना चाहता था; दूसरे दक्खिन की तरफ़ वह अपना साम्राज्य बढ़ाने का इच्छुक था। दक्खिन में "सीमान्त के शासकों की बेपरवाही से तट के अनेक शहर और बन्दरगाह फिरंगियों के हाथ में चले गये थे" उन्हें वापिस लेना भी अकबर का ध्येय था। गुजरात के तट से पुर्तगालियों को निकाल देने के अनेक जतन उसने किये, पर सब व्यर्थ हुए।

अकबर ने काबुल तो जीत लिया, पर तूरान के उज़्बक अब्दुल्लाख़ाँ ने, जो अकबर के साथ-साथ गद्दी पर बैठा था, बदख़्शां को जीत लिया। अकबर को डर था कि कहीं वह भारत पर भी हमला न कर दे। इसलिए अकबर ने मानसिंह को काबुल भेजा और अब्दुला ऊज़्बक की मृत्यु तक ख़ुद भी लाहौर में ही रहा। सीमान्त के पठान तथा स्वात बाजौर के लोग उसी समय विद्रोह कर बैठे। स्वातियों से लड़ता हुआ अकबर का मित्र बीरबल मारा गया। राजा टोडरमल ने उस हार का बदला लिया, परन्तु पठानों के ठेठ इलाकों ने अकबर के वंशजों के समय तक मुग़लों की अधीनता कभी न मानी। उन चढ़ाइयों के सिलसिले में कश्मीर जीता गया। ठट्ठा अर्थात् दक्खिनी सिन्ध जीतने के लिए मुलतान का शासन बैरमख़ां के बेटे अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना को सौंपा गया। ख़ानख़ाना को इसमें सफलता हुई। पीछे सिबी, कन्दहार और मकरान भी अकबर के अधिकार में आ गये।

उधर सलीम ने विद्रोह किया और इलाहाबाद में स्वतंत्र हो

बैठा। अकबर को अपनी विजय योजनाएँ छोड़कर आगरा लौटना पड़ा। अहमदनगर सल्तनत पूरी तरह मुग़ल साम्राज्य में न मिल पायी, तथा बीजापुर और गोलकुण्डा तो ज्यों के त्यों बने रहे। उन दोनों के दबाव से कर्णाटक के राजा वेंकटाद्रि के बेटे को पेनुकोंडा भी छोड़ना पड़ा, और तब तमिल देश के उत्तरी छोर पर चन्द्रगिरि को उसने अपनी राजधानी बनाया (लगभग १६००ई०)।

विद्रोह के सिलसिले में सलीम ने अकबर के मित्र अबुल-फ़ज़ल को ओरछा के राजा वीरसिंहदेव बुन्देले के हाथों मरवा डाला। पीछे बड़ी मुश्किल से उसने अपने पिता से समझौता किया। १६०५ ई० में अकबर बीमार हुआ। तब दरबारियों का दल सलीम के बजाय उसके बेटे खुसरो को गद्दी पर बैठाने का जतन करने लगा; किन्तु अंतिम समय अकबर ने सलीम को उत्तराधिकारी बनाया।

अकबर-युग में साहित्य और कला—अकबर ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिलाकर एक करना चाहा। इस विचार से उसने वेद, रामायण और महाभारत के फ़ारसी अनुवाद करवाये। उसके समय में फ़ारसी में बहुत से इतिहास ग्रंथ भी लिखे गये। उनमें अबुलफ़ज़ल के लिखे अकबरनामे के अंतर्गत आईने-अकबरी एक अनमोल ग्रंथ है। संगीत और चित्रण-कला को भी अबकर ने प्रोत्साहन दिया। १६ वीं सदी के शुरू में राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर में एक संगीत विद्यालय स्थापित किया था। वहाँ के गायक तानसेन को अकबर ने अपने दरबार में जगह दी। ईरान

के शिया शाहों के आश्रय में तेरहवीं सदी से चित्रण-कला का एक संप्रदाय चला आता था। अकबर ने दसदन्थ और बसावन आदि हिन्दू चितेरों के साथ शीराज़ के चितेरे अब्दुस्समद को अपने दरबार में रक्खा। हिन्दी और ईरानी क़लमों के मिलने से एक नयी शैली चल पड़ी। शेरशाह के मक़बरे में हिन्दू-मुस्लिम शैलियों के समन्वय से जिस नयी शैली का उदय हुआ था, वह मुग़ल युग में खूब फूली फली। उसका अंतिम उत्कर्ष शाहजहाँ के ताजमहल में प्रकट हुआ। अकबर की इमारतों में आगरा और इलाहाबाद के क़िले तथा फ़तहपुर सीकरी के सुन्दर महल उल्लेखनीय हैं। उनके आश्रित हिन्दू राजाओं ने भी वृन्दावन में कई मंदिर बनवाये।

दरबारी साहित्य से कहीं अधिक महत्व का सन्तों का साहित्य था। सूरदास, तुलसीदास और गुरु अर्जुनदेव तथा रामानन्द के अनुयायी दादू, मलूक, रैदास आदि सन्त कवि अकबर के समय में हुए। अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना ने रहीम नाम से हिन्दी में जो कविता की, उस पर भी स्पष्ट वैष्णव छाप है। तुलसीदास का "रामचरितमानस" तो हिन्दी भाषी जनता का धर्म-ग्रन्थ बन गया। उसने सरल और सच्चे जीवन के जो आदर्श अंकित किये, वे आज भी हमारी जनता के आदर्श हैं।

दादू अहमदाबाद का धुना था और रैदास चमार। पंजाब में गुरु नानक ने अपने 'उदासी' (विरक्त) बेटे के बजाय अपने एक शिष्य को अपना पद और गुरु अंगद का नाम दिया था।

अंगद ने नानक की वाणी का संकलन किया। पंजाब में तब महाजनों के कारबार में काम आनेवाले टूटे-फूटे अक्षरों के सिवाय कोई लिपि न थी। अंगददेव ने कश्मीर की शारदा लिपि को गुरुमुखी नाम से अपना लिया। गुरुओं की वाणियाँ उसी में लिखी गयीं। तीसरे गुरु अमरदास ने अपने दामाद रामदास के वंश में गुरुगद्दी स्थायी कर दी। रामदास ने अमृतसर की स्थपना की। पांचवें गुरु अर्जुनदेव (१५८२-१६०६ ई०) ने गुरुओं की वाणियाँ तथा रामानन्द, नामदेव, कबीर, फ़रीद, रैदास, सूरदास आदि भक्तों के वचनों का संकलन कर एक 'ग्रन्थ' तैयार किया जो 'सिक्खों' का धर्मग्रन्थ बना।

अर्जुन ने अपने शिष्यों को तुर्किस्तान से घोड़ों का व्यापार करने को भी प्रेरित किया, जिससे उनका दूर देश जाने का डर जाता रहे तथा वे अच्छे सवार बन सकें।

आख़िरी ख़त

[भारत के हृदय-सम्राट पं. जवाहरलाल नेहरू से कौन परिचित न होगा ? आपका जन्म सन् १८८९ में हुआ था। आप, जैसे राजनीतिक क्षेत्र में एक महान् व्यक्ति हैं, वैसे ही साहित्यिक क्षेत्र में भी आपका कम स्थान नहीं है। राजनीतिक कार्य में लगे रहने पर भी आप कुछ न कुछ ठोस सामग्री से हिन्दी मंदिर को सजाते ही रहते हैं। आपकी लिखी हुई कई पुस्तकें निकल चुकी हैं।]

लो बेटी, हमारा काम ख़त्म हुआ। यह लम्बी कहानी समाप्त हुई। अब मुझे और नहीं लिखना है। लेकिन ख़त्म

करते-करते सारी बात को सँवारने के ढंग पर एक ख़त और लिख डालने की इच्छा होती है। यह आख़िरी ख़त है।

वैसे ख़त्म करने का समय भी हो चुका, क्योंकि मेरी दो साल की मियाद भी पूरी होने को आयी। आज से तैंतीस दिन में मैं छूट जाऊँगा। जेलर तो कभी-कभी यह धमकी भी देता है कि शायद इससे पहले ही छोड़ दिया जाऊँ। अभी पूरे दो बरस तो नहीं हुए हैं, मगर अच्छी चाल-चलनवाले कैदियों को जो छूट मिलती है, उसके अनुसार मेरी सज़ा में भी साढ़े तीन महीने घट गये हैं। मैं जेलखाने में भलमानुस समझा जाता हूँ, हालाँकि मैंने यह नाम कमाने के लिए सचमुच कुछ नहीं किया है। इस तरह मेरी छठी सज़ा पूरी होती है और मैं विशाल संसार में यहाँ से निकलकर फिर आऊँगा। मगर किसलिए! उससे फ़ायदा क्या? जब मेरे ज़्यादातर साथी और दोस्त जेलों में पड़े हुए हैं और सारा देश एक बड़ा जेलख़ाना-सा दिखाई देता है, तो मैं ही बाहर क्या करूँगा?

मैंने ख़तों का पहाड़-सा खड़ा कर दिया। और कितने स्वदेशी काग़ज़ पर कितनी स्वदेशी स्याही फैला दी! आश्चर्य होता है कि यह काम इस लायक था या नहीं? क्या इस सारे काग़ज़ और स्याही से तुम्हें कोई रोचक सन्देश मिलेगा? तुम ज़रूर 'हाँ' कहोगी, क्योंकि तुम समझोगी कि और किसी जवाब से मेरा जी दुखेगा और तुम्हारा मेरे साथ इतना पक्षपात तो है ही कि तुम इस तरह की जोखिम नहीं उठा सकती। मगर तुम्हें यह अच्छे लगें

या न लगें, तुम्हें इतना तो ख़्याल होगा ही कि दो साल की इस लम्बी अवधि में रोज़-रोज़ इन्हें लिखकर मैं सुखी हुआ हूँ। जब मैं यहाँ आया था, जाड़े के दिन थे। सर्दी के बाद थोड़े दिनों के लिए वसन्त-ऋतु आयी और फिर गर्मी के मौसम ने उसकी जल्दी ही हत्या कर डाली। बाद में जब ज़मीन सूख गयी और गर्मी के मारे मनुष्य और पशुओं का साँस लेना मुश्किल हो गया तब वर्षा-ऋतु आयी और उसने सब जगह ताज़ा और ठण्डा पानी-ही-पानी बरसा दिया। उसके बाद फिर जाड़ा आया और आकाश निहायत साफ़ और नीला हो गया और तीसरे पहर का वक़्त सुहावना मालूम होने लगा। वर्ष का चक्र ख़त्म होकर फिर शुरू हुआ। जाड़े के बाद वसन्त, वसन्त के बाद गर्मी और गर्मी के बाद वर्षा—यही दौर रहा। मैं यहाँ बैठा-बैठा तुम्हें लिखता रहा हूँ, तुम्हारी याद करता रहा हूँ, ऋतुओं को आते और जाते देखता रहा हूँ और अपनी 'बैरक' की छत पर मेह की तड़ातड़ सुनता रहा हूँ।

बेंजमिन डिज़रैली उन्नीसवीं सदी का एक बड़ा अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ था। उसने लिखा है कि "और लोग अगर देश-निकाले और कैद की सज़ा भुगतने के बाद ज़िन्दा रहते हैं तो निराश हो जाते हैं। लेकिन साहित्यिक लोग उन्हीं दिनों को जीवन का सबसे मधुर काल समझ सकते हैं।" वह ह्यूगो ग्रोटिंज़ के बारे में लिख रहा था, जो सत्रहवीं सदी का एक मशहूर क़ानून-दाँ और तत्त्वज्ञानी था। उसे उमर-कैद की सज़ा हुई थी, लेकिन वह किसी तरह दो

वर्ष बाद ही निकल भागा था। उसने ये दोनों साल जेल में तत्त्वज्ञान और साहित्य-संबन्धी काम में बिताये थे। और भी बहुत-से प्रसिद्ध साहित्यिक लोग जेल की हवा खा चुके हैं। शायद इनमें से सबसे मशहूर दो आदमी हुए हैं। एक तो स्पेन-निवासी सर्वोंटीज़ जिसने "डॉन क्विग्ज़ोट" लिखा, और दूसरा जॉन बनियन अंग्रेज़ था जिसने "पिल्ग्रिम्स प्रॉग्रेज़" लिखा था।

मैं कोई साहित्यिक आदमी नहीं हूँ और यह कहने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैंने जो अनेक वर्ष जेलख़ाने में काटे हैं वे मेरे जीवन के सबसे मधुर वर्ष थे। मगर मैं यह ज़रूर कहूँगा कि यह वक्त गुज़ारने में मुझे लिखने-पढ़ने के काम से अद्भुत सहायता मिली। मैं साहित्यकार भी नहीं और इतिहासकार भी नहीं। तो मैं असल में हूँ क्या? मुझे इस सवाल का जवाब देने में कठिनाई होती है। मैं बहुत बातों में दख़ल देता रहा हूँ। मैंने कॉलेज में विज्ञान शुरू किया, फिर क़ानून पास किया, और अंत में जीवन की भिन्न-भिन्न बातों में रस लेने के बाद जेल जाने का धन्धा ग्रहण कर लिया। हिन्दुस्तान में यह पेशा बहुत लोग करने लगे हैं!

इन चिट्ठियों में मैंने जो कुछ लिखा है उसे तुम किसी भी विषय पर आख़िरी बात न समझना। राजनीतिज्ञ लोग हर विषय पर कुछ-न-कुछ कहना चाहते हैं और उन्हें दर-असल जितना ज्ञान होता है उससे अधिक दिखाया करते हैं। इसलिए उनपर कड़ी नज़र रखने की ज़रूरत है। मेरी इन चिट्ठियों में अलग-अलग विषयों का सिर्फ़
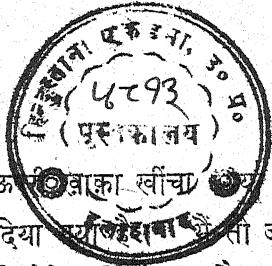
ऊ[illegible] ख़ाका खींचा [illegible] है और एक हलका-सा सिलसिला मिला दिया [illegible]सी जो जी में आया लिखता गया हूँ। कहीं तो मैंने सदियों का और अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का थोड़ासा ज़िक्र कर दिया है और कहीं किसी एक ही घटना पर मुझे दिलचस्पी हुई तो बहुत समय लगा दिया है। तुमने देखा होगा कि यह बात खूब स्पष्ट है कि कौनसी बातें मुझे पसन्द हैं और कौनसी बातें मुझे नापसन्द हैं। इसी तरह से मुझ पर जेल में कभी कुछ, और कभी कुछ, धुन सवार होती रही है। मैं नहीं चाहता कि तुम ये सब बातें ज्यों-की-त्यों मान लो। मुमकिन है, मेरे वर्णन में सचमुच बहुत भूलें हों। जेल में न पुस्तकालय होता है और न ऐसी पुस्तकें पास होती हैं, जिन्हें देखकर आदमी अपनी जानकारी को सही या ताज़ा कर सके। इसलिए इतिहास के विषय पर लिखने के लिए वह जगह बहुत अनुकूल नहीं होती। मुझे बहुत-कुछ उन याददाश्तों पर निर्भर रहना पड़ा है, जो मैंने बारह वर्ष पहले जेल-यात्रा शुरू करने के समय से ही इकट्ठी कर रखी थीं। मेरे पास यहाँ बहुत-सी किताबें भी आयीं, लेकिन वे जैसी आयीं वैसी ही चली गयीं, क्योंकि मैं यहाँ इकट्ठी नहीं रख सकता था। कभी-कभी मुझपर अपनी बड़ी उम्र का असर ज़्यादा रहा और मैं यह भूल गया कि मैं ये चिट्ठियाँ एक लड़की के लिए लिख रहा हूँ। इस कारण मैं कहीं-कहीं इस ढंग से लिख गया, जिसमें कि मुझे नहीं लिखना चाहिए था।

मैंने तुम्हारे सामने सिर्फ़ रूप-रेखा रख दी है। यह इतिहास नहीं है। इसमें तो लम्बे भूतकाल की केवल उड़ती हुई झलक दिखाई गयी है। अगर तुम्हें इतिहास से रुचि हो और तुम पर उसका कुछ भी जादू होता हो, तो तुम्हें बहुत-सी ऐसी किताबें मिल जायँगी, जिनसे तुम्हें प्राचीनकाल का सिलसिला बांधने में मदद मिले। मगर सिर्फ़ किताबें पढ़ने से ही काम न चलेगा। अगर तुम्हें प्राचीनकाल का हाल जानने की इच्छा हो तो तुम्हें उसे सहानुभूति और समझ की दृष्टि से देखना होगा। जो आदमी बहुत समय पहले हुआ हो उसे समझने के लिए तुम्हें यह समझना होगा कि वह कैसे वातावरण और कैसी परिस्थिति में रहा था और उनके दिमाग़ में क्या-क्या विचार भरे हुए थे। प्राचीनकाल के मनुष्यों के बारे में इस तरह से राय बनाना मानों वे आज जीवित हैं और उनके विचार भी हमारे ही जैसे हैं, बेहूदा बात है। आज गुलामी का समर्थक कोई नहीं मिल सकता। मगर महान अफ़लातून समझता था कि दास-प्रथा ज़रूरी है। बहुत समय नहीं हुआ, जब संयुक्तराष्ट्र में गुलामी की रक्षा के लिए हज़ारों आदमियों ने अपने प्राण दे दिये थे। हम आज की नाप से पुरानी बातों का निर्णय नहीं कर सकते, यह बात हर शख़्स ख़ुशी से मंजूर करेगा। लेकिन सब लोग यह क़बूल नहीं करेंगे कि वर्तमान के बारे में पुराने समय की नाप में राय बनाना भी उतनी ही बेहूदा आदत है। ख़ास तौर पर विभिन्न धर्मों ने भी पुराने विश्वासों और रीति-रिवाजों को सड़ा दिया है। इनका देश-

काल के अनुसार उपयोग रहा होगा, मगर हमारे वर्तमान युग के लिए तो ज़रा भी अनुकूल नहीं है।

इसलिए तुम पुराने इतिहास को हमदर्दी की नज़र से देखोगी तो सूखी हड्डियों पर मांस और ख़ून चढ़ जायगा और तुम्हें एक ज़िन्दा और जंगी जुलूस दिखाई देगा। इसमें हर मुल्क और हर ज़माने के स्त्री-पुरुष और बच्चे मिलेंगे, जो हमसे भिन्न, फिर भी हम जैसे ही होंगे और वे ही मानवीय गुण और कमज़ोरियाँ उनमें भी मिलेंगी। इतिहास कोई जादू का खेल नहीं है, मगर जिनकी आँखें हैं उनके लिए उसमें जादू ख़ूब है।

इतिहास के अजायब घर के बेशुमार चित्र हमारे दिलों पर अंकित हैं। बड़े-बड़े साम्राज्य चढ़े हैं और गिरे हैं। हज़ारों वर्ष तक मनुष्य ने उन्हें भुला भी दिया। बाद में किसी धैर्यवान अन्वेषक ने रेत के नीचे ढके हुए उनके खण्डहरों को फिर खोद निकाला। परन्तु साम्राज्यों की अपेक्षा अनेक विचार और कल्पनाएँ अधिक बलवान और दृढ़ सिद्ध हुई हैं।

प्राचीनकाल से हमें बहुत-सी चीज़ें देन के रूप में मिली हैं। सच बात तो यह, संस्कृति, सभ्यता, विज्ञान या सत्य के कई पहलुओं के ज्ञान के रूप में आज जो हमें मिला हुआ है वह दूर या निकट के भूत की देन है। हम इस ऋण को स्वीकार करें, यह ठीक ही है। परन्तु हमारा कर्तव्य प्राचीन के साथ ही ख़त्म नहीं हो जाता। हमारा भविष्य के प्रति भी कुछ कर्तव्य है, और

शायद यह कर्तव्य उससे भी बड़ा है जो हमारा प्राचीनकाल के प्रति है ; क्योंकि जो बात हो चुकी, उसे हम बदल नहीं सकते। भविष्य तो अब आयगा। मुमकिन है हम उसे थोड़ा बना सकें। अगर भूतकाल ने हमें सत्य के कुछ दर्शन कराये हैं तो भविष्य के गर्भ में भी उनके कुछ पहलू छिपे हुए हैं और वह हमें उनकी खोज का आमंत्रण देता है। मगर अक्सर गुज़रे हुए ज़माने को आनेवाले समय से ईर्षा होती है और वह अपने पंजे में हमें जकड़े रखना चाहता है। हमारा काम है कि हम उससे अपने आपको छुड़ाकर भविष्य से मिलने और उसकी ओर बढ़ने की कोशिश करें।

पुराना ज़माना श्रद्धा का, अन्धविश्वास का, बिना पूछे-ताछे मान लेने का ज़माना था। अगर कारीगरों, बनानेवालों और साधारणतः सभी लोगों में श्रद्धा न होती, तो क्या पिछली सदियों के ये अद्‌भत मन्दिर, मस्जिद और गिरजे बन सकते थे? जिन पत्थरों को उन्होंने भक्ति-भाव से एक-दूसरे पर चुना या जिनके उन्होंने सुन्दर चित्रण किये, वे उस श्रद्धा के बोलते-चालते प्रमाण हैं। पुराने मंदिरों के शिखर, पुरानी मस्जिदों की नाजुक मीनारें, पुराने गिरजे ऐसा गहरी भक्ति-भावना का प्रमाण दे रहे हैं, जिसे देखकर हम चकित रह जाते हैं और ऐसा मालूम होने लगता है मानों ये पत्थर और संगमरमर आकाश की तरफ़ मुँह करके प्रार्थना कर रहे हों। भले ही उनके जैसी श्रद्धा हममें न हो, पर इन्हें देखकर हमें रोमांच हो आता है। लेकिन उस श्रद्धा के दिन गये, और उनके साथ ही

पत्थर का वह मुँह बोलता जादू भी चला गया। हज़ारों मन्दिर, मस्जिद और गिरजे बन रहे हैं, मगर उनमें वह भावना कहाँ है जो मध्ययुग के पूजास्थानों को सजीव करती थी? उनमें और हमारे युग के निशान व्यापारिक दफ़्तरों में बहुत कम अंतर है।

हमारा युग दूसरी ही तरह का है। यह तो शंका और तर्क का युग है। इसमें बहुत-से भ्रम दूर हो गये हैं और कोई बात निश्चित नहीं है। हमारा बहुत-सी पुरानी बातों पर विश्वास नहीं रहा। एशिया, योरोप, अमेरिका, सभी जगह पुराने विश्वासों और रीति-रिवाज़ों को स्वीकार नहीं किया जाता। हम अपनी परिस्थिति के अनुकूल सत्य के नये तरीक़ों और नये पहलुओं की खोज करते हैं। हम एक-दूसरे से सवाल करते हैं, बहस करते हैं, झगड़ा करते हैं और बेशुमार 'वाद' और दर्शन बना लेते हैं। सुकरात के ज़माने की तरह हम भी पूछताछ के युग में रहते हैं, मगर यह पूछताछ एथेन्स जैसे एक शहर में ही महदूद नहीं है, यह दुनियाँ भर में फैली हुई है।

कभी-कभी दुनियाँ के अन्याय, दुख और पाशविकता से हमारा जी ऊब उठता है, हमारे मस्तिष्क में अंधेरा छा जाता है और हमें कोई रास्ता नहीं सूझता। मैथ्यू आर्नाल्ड की तरह हमें भी लगता है कि इस संसार में कोई आशा नहीं है, हम इतना ही कर सकते हैं कि एक-दूसरे के प्रति सच्चे रहें।

फिर भी हम इस तरह की निराशा-भरी निगाह रखें तो

कहना होगा कि हमने जीवन या इतिहास किसी से भी ठीक-ठीक शिक्षा ग्रहण नहीं की है। इतिहास तो हमें यह सिखाता है कि वृद्धि और उन्नति होती रहती है और मनुष्य की प्रगति कितनी हो सकती है इसका तो अंत ही नहीं। इसी प्रकार जीवन भी भिन्न-भिन्न तत्त्वों से भरा हुआ है। जहाँ उसमें बहुत जगह दलदल और कीचड़ है, वहाँ उसमें महासागर, पर्वत, बर्फ़, बर्फ़ की नदियाँ और (ख़ासकर जेल में !) तारों-भरी अद्भुत रातें हैं, कुटुम्ब और मित्रों का प्रेम है, एक ही उद्देश्य के लिए काम करनेवाले साथियों का साथ है, संगीत है, पुस्तकें हैं और विचारों का साम्राज्य है।

विश्व के सौंदर्य की तारीफ़ करना और विचार और कल्पना के जगत् में रहना आसान है। मगर इस तरह औरों के दुखों से जी चुराना, उनका क्या हाल है इसकी परवाह न करना, साहस या हमदर्दी की निशानी नहीं है। विचार की अच्छाई और सचाई इसी में है कि उसके अनुसार अमल किया जाय। हमारे मित्र रोमियाँ रोलाँ कहते हैं—"कार्य विचार का अन्त है। जिस विचार की दृष्टि कार्य की ओर नहीं होती वह, कैसा भी हो, निरर्थक है और धोखाधड़ी है। इसलिए हमें अगर विचार का सेवक बनना है तो कार्य का सेवक भी बनना ही होगा!"

अक्सर लोग कार्य से इसलिये कन्नी काटते हैं कि उन्हें नतीजे का डर होता है, क्योंकि कार्य का अर्थ जोखिम और ख़तरा। ख़तरा दूर से ही भयानक दीखता है। नज़दीक से देखने

पर वह इतनी बुरी चीज़ नहीं है; ज़्यादातर तो वह सुहावना साथी ही होता है और उससे जीवन का स्वाद और आनंद बढ़ता है। कभी-कभी जीवन का साधारण क्रम बड़ा सुस्त हो जाता है। हमें बहुत-सी चीज़ें यों ही मिल जाती हैं और उनसे हमें कोई आनन्द नहीं मिलता, परन्तु जब उन मामूली चीज़ों के बिना हम थोड़े दिन रह लेते हैं तब हमें उनकी कितनी क़द्र हो जाती है! बहुत लोग ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई करते हैं और चढ़ाई का आनन्द लेने के लिए प्राण और शरीर को जोख़िम में डालते हैं। जब वे किसी कठिनाई को पार कर लेते हैं, किसी ख़तरे को जीत लेते हैं, तब उन्हें कितनी ख़ुशी होती है!

हम सबके सामने दो मार्ग हैं। हम जिसे चाहें पसन्द कर लें। एक तो नीची घाटियों में रहना, जहाँ धुन्ध और कोहरे से तंग होना पड़ता है, परन्तु यहाँ शरीर की रक्षा ठीक-ठीक होती है। दूसरा ऊँचे पर्वतों पर चढ़ना, जोख़िम और ख़तरे में पड़ना और साथियों को डालना, आकाश का शुद्ध वायुसेवन करना, दूर-दूर के दृश्यों का मज़ा लूटना और उगते हुए सूर्य का स्वागत करना।

मैंने इस ख़त में कवियों और दूसरे लेखकों के कई उद्धरण दिये हैं। अंत में एक और दे देता हूँ। यह गीतांजलि का है। यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता या प्रार्थना है, जिसका अनुवाद श्री सुधीन्द्र ने यों किया है—

स्वतंत्रता स्वर्ग में पिता हे, जगे-जगे देश यह हमारा!

अशंक मन हो, उठा हुआ सिर,
स्वतंत्र हो पूर्ण ज्ञान जिसमें
जहाँ घरों की न भित्तियाँ ये करें जगत खण्ड-खण्ड न्यारा,
स्वतंत्रता-स्वर्ग में पिता हे, जगे-जगे देश यह हमारा !

सदैव ही सत्य के तले से
जहाँ पिता शब्द-शब्द निकले
छुए बढ़ा हाथ पूर्णता को जहाँ परिश्रम अथक हमारा
स्वतंत्रता-स्वर्ग में पिता हे, जगे-जगे देश यह हमारा !

छिपे भटककर सुबुद्धि-धारा
न रूढ़ियों के दुरन्त मरु में
विशाल-विस्तृत विचार कृति में लगे जहाँ चित्त, पा सहारा
स्वतंत्रता-स्वर्ग में पिता हे, जगे-जगे देश यह हमारा !

तो अपना काम ख़त्म हुआ और यह आख़िरी ख़त भी आख़िरी ख़त ! हरगिज़ नहीं ! मैं तुम्हें और भी बहुत से ख़त लिखूँगा। परन्तु यह सिलसिला यहीं समाप्त होता है और इसलिए—

तमाम शुद !

———

बीमारियों की रोक-थाम

[श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, पं० जवाहरलाल नेहरू की बहन हैं। आप संयुक्त प्रान्तीय कॉंग्रेसी सरकार की मिनिस्टर रह चुकी हैं। आप अक्सर समाचार-पत्रों में लिखती रहती हैं। राजनीतिक क्षेत्र में आपका बड़ा मान है।]

चाहे हम डाक्टर हों, चाहे हम पढ़े-लिखे हों, हिन्दुस्तान में रहने से हम लोगों की भावना कुछ ऐसी हो गयी है कि जब तक हमारे सर पर कोई मुसीबत आ नहीं जाती, हम लोग उस वक़्त तक उस पर ग़ौर नहीं करते। यह बात मैंने सिर्फ़ छोटे घरानों में नहीं देखी, बल्कि बड़े और तालीमयाफ़्ता घरानों में भी देखी है कि पढ़े-लिखे लोग भी, अगर उनसे आप यह कहें कि भाई बीमारी का अंदेशा है—हैज़ा फैलनेवाला है, या चेचक की आजकल फ़सल है—तो वे कहते हैं कि जब आयेगा तब देखा जायगा। हमारा यह नुक़्तये-निगाह है और उसकी वजह से नतीजा यह होता है कि जब बीमारी पूरी तौर से आ जाती है तो हम चौंकते हैं और जागते हैं। मगर जागने में भी हमको कुछ न कुछ अर्सा लग ही जाता है। नतीजा यह होता है कि बजाय इसके कि आपस में मिलके वबा को दबाने की कोशिश की जाती, अलग-अलग फ़िर्के बन जाते हैं और उसके साथ-साथ लोग यह भी कहते हैं कि गवर्नमेंट नाकारा है और कोई काम नहीं कर रही है।

मैं कल इंगलैण्ड की हेल्थ मिनिस्ट्री की पिछले साल की रिपोर्ट पढ़ रही थी। एक बात को देखकर मुझे सख़्त ताज्जुब हुआ

कि सन् १९३८ में कारिटान में टाइफ़ायड का एक केस हुआ। इस केस के होते ही शहर भर में सनसनी फैल गयी और काफ़ी ऊधम मचा। आख़िर क्या वजह है कि ऐसे सभ्य मुल्क में टाइफ़ायड का केस हो। इस केस के अलावा एक और केस हो गया और इस दूसरे केस के होते ही पब्लिक में बहुत इन्तेशार पैदा हो गया और लोगों ने हेल्थ मिनिस्ट्री को मज़बूर किया कि वह इस मामले में जाँच कराये। इसकी जाँच के लिये एक नामी शख़्स मुक़र्रर किये गये और जाँच बैठी। उन्होंने जाँच करना शुरू किया कि आजकल कहाँ से पानी आता है, मेडिकल आफ़िसर आफ़ हेल्थ की क्या ग़लती है, अस्पतालों के अंदर क्या ख़राबियाँ पैदा हो गयी हैं, मेडिकल सर्वेन्टों और नर्सों की कहाँ तक ग़लती है। गरज़ यह कि एक निहायत लम्बी-चौड़ी जाँच हो गयी, हालाँकि कुल दो ही जानें ज़ाया हुई थीं। और हमारे यहाँ क्या हालत है?

हमारे यहाँ की हालत यह है कि जब ३५ हज़ार आदमी मर जाते हैं, उस वक़्त सोचते हैं कि कुछ करें या न करें! उसके बाद आपस में ख़्यालात का इज़हार होता है कि यह करना चाहिए और वह करना चाहिए। गरज़ कि जब तक उसकी रोक-थाम की तदबीरें की जाती हैं, इन बातों में काफ़ी वक़्त सर्फ़ हो जाता है। ज़ाहिर है कि जब काम का वक़्त आता है तो काम इस क़दर हाथ से ज़्यादा हो जाता है कि इन बातों की अहमियत बाक़ी नहीं रहती।

मैं उन मुक़ामात पर भी गयी, जहाँ तालीमयाफ़्ता लोग रहते

हैं और मैंने उस हिस्से को भी देखा जहाँ ज़्यादातर ज़ाहिल लोग रहते हैं। इन मुक़ामात को देखने के बाद यह असर नहीं हुआ कि बीमारी क्यों फैलती है। बीमारी फैलने के मुतल्लिक़ मुझे ताज्जुब नहीं हुआ, बल्कि देखने और घूमने से मुझे ताज्जुब यह हुआ कि यहाँ इंसान कैसे ज़िन्दा रहते हैं? मैं आपको यक़ीन दिलाना चाहती हूँ कि पब्लिक-हेल्थ-डिपार्टमेंट जो हमारा काम कर सकता है वह समुद्र की एक बूंद भी नहीं है। इसलिए जो सवाल है वह यह है कि हम अपने रहने-सहने के तरीके बदल दें और हमारा यह फ़र्ज़ होना चाहिए कि हम पब्लिक को समझावें कि आदमियों के मरने की क्या वजह होती है।

लखनऊ में मैंने ऐसे-ऐसे मकानों को देखा है, जिनमें एक मुक़ाम पर छः-छ सात-सात आदमी रहते थे। सिर्फ़ इन्सान ही नहीं बल्कि बैल, गाय, बकरी भी उसी मकान में उनके साथ थे। मकानों के अन्दर कोठरियों को देखने से यह मालूम हुआ कि अगर उनमें टार्च की रोशनी भी जलाई जाय तो उजाला न हो। यह है शहर के मकानों की हालत। ऐसी हालत में अगर बीमारियाँ न हों तो ताज्जुब है।

जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ व अब भी कहती हूँ कि वहाँ के रहनेवाले कैसे ज़िन्दा रहते हैं। मकानों के अन्दर इतनी सीलन और उनकी ईंटें ऐसी मालूम हुई थीं कि अगर ज़ोर से धक्का दिया जाता तो वह गिर जातीं। इसलिए जब तक इन चीज़ों को

दूर नहीं करेंगे तब तक कोई भी जादू ऐसा नहीं है जो हमारे शहर को इन रोगों से बचा सके।

दुनियाँ के दीगर मुल्कों में, जहाँ सेहत बदल गयी है, यह सवाल सबसे पहले था कि वहाँ की सेहत कैसे अच्छी हो सकती है। इसलिए वहाँ के लोगों ने हवादार मकान बनवाये, अपने मकानों को सीलन से बचाया, घरों को ग़न्दगी से महफ़ूज़ किया। इस तरीके से वहाँ की सेहत अच्छी हुई और इसका नतीजा यह हुआ कि छूत से फैलनेवाली बीमारियाँ नहीं दिखाई देतीं और अगर कोई केस हो भी गया तो फ़ौरन उसकी रोक-थाम कर दी जाती है। मगर हमारे मुल्क में अभी तक पब्लिक में यह ख़्याल पैदा नहीं हुआ कि सेहत क्योंकर अच्छी हो सकती है। मैंने ख़ुद लखनऊ में देखा है कि यहाँ बहुत कम जगहें हैं जहाँ हरी घास हो, जहाँ लोग ठंडी हवा खा सकें। यह तमाम चीज़ें ऐसी हैं कि जिनकी तरह हमको तवज्जह करना चाहिए और यह देखना चाहिये कि हमारी सेहत कैसे अच्छी हो सकती है। मैं चाहती हूँ कि आप अपना फ़र्ज़ समझें और इस बात की कोशिश करें कि हर तरह की बीमारियाँ जो कि आम तौर से फैल जाती हैं और जिनसे हज़ारों जानें ज़ाया जाती हैं, उनमें कमी हो सके।

माउण्ट एवरेस्ट की चढ़ाई

[खोज के पथ पर से]

उत्तर में हिमालय पर्वत भारत वर्ष का मुकुट है। भारतवर्ष को सुवर्ण भूमि बनाने का श्रेय अधिकतर इसी पर्वत को है। क्योंकि एक ओर तो यह मानसून-वायु को भारतवर्ष के बाहर नहीं जाने देता, जिससे यहाँ वर्षा होती है। इस वर्षा ही के कारण उत्तरी भारतवर्ष की सारी नदियों का अस्तित्व है। ये नदियाँ हिमालय पर्वत से ही साल भर तक अमृत जल प्राप्त करती हैं। दूसरे हिमालय पर्वत एक सुदृढ़ दीवार की भाँति उत्तर की अत्यन्त ठण्डी वायु को भारतवर्ष में नहीं आने देता। यह पर्वत अपनी अनुकंपा से इस प्रदेश के लिये और जो-जो लाभ प्रदान करता है उनका समुचित वर्णन करना कठिन है। संसार में सबसे ऊँचा पर्वत होने का गौरव हिमालय को प्राप्त है। इसकी सबसे ऊँची चोटी जिसको माउण्ट एवरेस्ट कहते हैं २९,००२ फुट ऊँची है अर्थात् लगभग छः मील। इसका पता भारतवर्ष के सर्वे-विभाग (Survey Departmnet of India) को लगभग पूर्वशताब्दी के मध्य में लगा। सर्वे-विभाग के जो मनुष्य हिमालय पर्वत के शिखरों की ऊँचाई की खोज कर रहे थे उनमें से एक भारतवर्षीय भी था। जब उसको गणित से यह ज्ञात हुआ कि एक चोटी की ऊँचाई २९,००२ फुट होती है तो दौड़ा हुआ अपने आफ़ीसर कर्नेल एवरेस्ट के समीप गया, जो उस समय सर्वे-विभाग के सबसे उच्च पदाधिकारी थे और कहा—

"श्रीमन्! मैंने संसार भर में सबसे ऊँचे पर्वत-शिखर का पता लगा लिया है।" सचमुच यह चोटी संसार भर में सबसे ऊँची है। उस चोटी का नाम कर्नेल एवरेस्ट के नाम पर माउण्ट-एवरेस्ट रक्खा गया। इसका प्राचीन नाम गौरीशंकर शिखर है।

हिमालय पर्वत संसार में सबसे ऊँची पर्वत-श्रेणी है, पर उसके शिखर तक पहुँचना और उसके आसपास के प्रदेश का अनुसन्धान करना, यह ज़रा टेढ़ी खीर है।

इंग्लैण्ड में एक समिति है जिसका नाम रॉयल-जिओग्रॉफ़िकल समिति है जिसका कार्य भूगोल के ज्ञान को विस्तृत करना है। अपने जन्म-काल से यह अधिकतर अंग्रेज़ों को अज्ञात प्रदेशों की खोज के लिए उत्साहित करती रही है। उनको धन और अमूल्य सम्मति से सहायता देती रही है। इसी सम्मति की तथा एक और ऐल्पाइन-क्लब नाम की संस्था की ओर से यह अनुसन्धान करनेवालों की मण्डली रवाना हुई। इस यात्रा में बड़े-बड़े प्रसिद्ध यात्री और पर्वतों पर चढ़नेवाले वीरों ने भाग लिया। ये लोग इंग्लैंड से सन् १९२१ में चले। भारतवर्ष होकर उनको तिब्बत की यात्रा करनी थी, इसलिए उन लोगों को हिमालय पर्वत पार करना था। पहाड़ी घाटियों से होकर, ऊँचे-ऊँचे दर्रों पर चढ़ते हुए वे लोग अन्त में तिब्बत की उपत्यका पर, जो १३,००० फुट ऊँची है, पहुँचे। वहाँ से उन लोगों ने उपत्यका पर होकर एक लंबी यात्रा की और वहाँ से वे ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से माउण्ट-एवरेस्ट पर सरलतापूर्वक चढ़ सकें।

अन्त में पर्वत के उत्तरी किनारे पर उनको एक मार्ग दिखाई दिया। यह एक ग्लेशियर, अर्थात् बर्फ की एक नदी पर होकर था। कुछ लोग पहाड़ के ऊपर चढ़े, पर १३,००० फुट से अधिक नहीं चढ़ सके। वे लोग प्रयत्न में अधिक सफल नहीं हुए। सन् १९२२ ई० में एक और मण्डली अनुसन्धान के लिए रवाना हुई।

सबसे प्रथम एक आधार-वास बनाया गया, जहाँ पर भोजन, डेरा तथा अन्य सामान जैसे-जैसे आता था रक्खा जाता था। वह कैम्प १६,५०० फुट की ऊँचाई पर था। फिर कुछ भारतीय कुलियों की सहायता से चार और कैम्प (पड़ाव) ऊपर कुछ-कुछ दूरी पर बनाये गये। चौथा कैम्प २३,००० फुट की ऊँचाई पर था। यहाँ से ४ अंग्रेज़ और ९ भारतीय कुली ऊपर इसलिए चढ़ने लगे कि पाँचवाँ कैम्प स्थापित करें और यदि संभव हो तो पर्वत की चोटी पर पहुँच जाँय।

सब लोग रवाना होने से पूर्व संध्या को बड़े प्रसन्न थे पर प्रातःकाल होने पर ज्ञात हुआ कि चार कुली पहाड़ी रोग से पीड़ित हैं। यह रोग अधिक ऊँचाई पर चढ़ने से इसलिए हो जाता है कि वहाँ पर वायु बहुत पतली हो जाती है, इसलिए जितनी देर में हम एक बार साँस भूमि पर लेते हैं ऊँचाई पर दो बार अथवा उससे अधिक बार लेनी पड़ती है। यह रोग बड़ा भयंकर होता है। सौभाग्य से शेष कुली आगे बढ़ने के योग्य थे, पर उन लोगों को भी शीतल और तेज़ वायु के बुरे प्रभाव का अनुभव होने लगा। अन्त में

भगीरथ प्रयत्न करने के पश्चात् सब लोगों को कोई शरणस्थान देखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसलिए उन्होंने दो डेरे खड़े किये। भारतीय कुलियों को तो कैम्प-नम्पर ४ लौटा दिया और चारों अंग्रेज़ आगे बढ़ने के लिए वहीं पड़े रहे।

प्रातःकाल उन चारों में से भी एक कुछ अस्वस्थ हो गया। इसलिए उसको वहीं छोड़ा और तीनों मनुष्य यात्रा के लिए चल पड़े। उनके चारों ओर की भूमि रात्रि को गिरे हुए हिम से ढकी हुई थी, जिसके अन्तःस्थल में पत्थर के गड्ढे छिपे हुए थे। तनिक भी नर्म-हिम हटा कि उनका जीवन संकट में था। इसके सिवा एक और कठिनाई थी कि ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों साँस लेना और भी कठिन होता जाता था। अब खड़े होकर चलना असम्भव था; इसलिए वे लोग केवल हाथ-पावों के सहारे रेंगते थे और बार-बार साँस लेने के लिए ठहर जाते थे।

तीनों मनुष्य दोपहर तक चढ़ते चले गये, फिर इस भय से कि कहीं शरण-स्थान पर वे दिन रहते-रहते न पहुँच सकें, लौट पड़े। वे २६,९४५ फुट की ऊँचाई पर पहुँच गये थे। लौटने की यात्रा चढ़ने की अपेक्षा और भी भयंकर थी। बर्फ़ गिरने के कारण भूमि और भी रपटनी हो गयी थी। बड़ी सावधानी से एक के पश्चात् दूसरा पाँव रखते हुए वे उतरने लगे। वासस्थान पर पहुँचकर उन्होंने अपने साथी को अपने साथ लिया और कैम्प नं. ४ की ओर चले। जिस बात का उनको भय था, वही हुई। मार्ग में

ही अंधेरा हो गया, भाग्यवश उनके पास एक मोमबत्ती थी, जिसके प्रकाश में वे उतरने लगे। नं. ४ कैम्प के समीप सहसा उनकी बत्ती बुझ गयी। उस समय उनकी निराशा का अनुमान नहीं हो सकता। चारों मनुष्य अंधेरे में रास्ता टटोलने लगे। पर ईश्वर को उनकी रक्षा करनी थी! भाग्यवश एक के हाथ एक रस्सी पड़ गयी जो बर्फ़ में गड़ी हुए थी और नं. ४ तक जाती थी। इस रस्सी को इन लोगों ने अपने सहारे के लिए बाँध रखा था। इस रस्सी के सहारे-सहारे वे लोग वहाँ पहुँचे और ईश्वर को धन्यवाद दिया। वहाँ पहुँचकर कुछ विश्राम लिया। दिन भर की थकावट के कारण अब उनको भूख भी बड़े ज़ोर से लग रही थी, इसलिए जैसे-तैसे कुछ भोजन का प्रबन्ध किया। पर प्यास के कारण उनका गला सूख गया था, इसलिए बिना कुछ जल आदि पिये ठोस भोजन उनके गले से उतरता न था। दैवयोग से वहाँ कोई साधन अग्नि प्रज्वलित करने का भी न था, जिससे हिम गलाया जाता। इसलिए उन्होंने कुछ मदिरा, कुछ जमे हुए दूध को फेंटकर और उसे चाटकर अपनी भूख-प्यास शांत की और सोने के लिए अपने चर्म-थैलों में घुस गये।

वे लोग प्रातःकाल कैम्प नं. ३ पर पहुँचे। उसी समय उनके साथियों की दूसरी मण्डली भी चढ़ने के लिए अग्रसर हुई। अब की बार जो यात्रा करनेवाले थे उनके पास एक प्रकार का यन्त्र था जो प्रत्येक मनुष्य की पीठ पर था। उसमें ऑक्सीजन अथवा प्राणप्रद वायु भरी थी। उस यन्त्र से एक नली निकलकर प्रति मनुष्य

की नाक के पास आती है, जिससे चढ़नेवाले को पतली वायु से कोई हानि नहीं पहुँचती थी ; क्योंकि ऊपर की पतली वायु में ऑक्सीजन की जो कमी रहती थी, वह इस रबर की नली से निकलती हुई वायु द्वारा पूर्ण हो जाती थी ।

इस चढ़ाई में दो अंग्रेज़ और एक गोरखा, जिसका नाम तेजवीर था, कैम्प नं. ४ से चलने के पश्चात् कुछ ऊपर चढ़े। मार्ग में ही रात्रि हो गयी, इसलिए उन्होंने एक डेरा खड़ा किया और विश्राम करने लगे, क्योंकि कैम्प नं. ४ को लौट जाना अब व्यर्थ था । परन्तु उनको विश्राम कहाँ ? रात्रि बड़ी भयंकर थी। सूर्यास्त के पश्चात् ही आँधी तेज़ होने लगी और उसके साथ-साथ हिम की बौछार भी होने लगी। हिम के सूक्ष्म कण डेरे के छिद्रों में होकर आते थे, जिनके कारण उन लोगों के सारे वस्त्र भीग गये। आँधी की प्रचण्डता का क्या कहना था ? वह इतनी प्रबल थी कि डेरे के साथ-साथ उन लोगों को भी उड़ा ले जा रही थी । उस समय अपनी सारी शक्ति लगाकर उन लोगों ने डेरे को खड़ा रक्खा, नहीं तो वह उड़ जाता और उसके साथ-साथ वे लोग न मालूम कितने हज़ार फुट नीचे गिरते और चकनाचूर हो जाते ।

प्रातःकाल हुआ, पर आंधी के प्राबल्य से ऊपर चढ़ना असम्भव हो गया । उनके लिए गर्म-गर्म भोजन तथा चाय कैम्प नं. ४ से कुली लोग लाये । पर अधिक शीत और पतली वायु के कारण उनकी दशा बिगड़ने लगी। तब उन्होंने ऑक्सीजन खोली। ऑक्सीजन

का भीतर शरीर में पहुँचना था कि एक दम वे अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगे। उस रात्रि को उन्होंने और विश्राम किया और दूसरे दिन चढ़ने की ठानी। दूसरे दिन वे लोग अधिक दूर नहीं चढ़े होंगे कि कँपा देनेवाली शीत की आँधी चलने लगी। अब चोटी केवल थोड़ी दूर थी पर उनका साहस टूट गया। भूख अलग सता रही थी। इसलिए लाचार होकर वे लोग २७,२३५ फुट की ऊँचाई पर चढ़कर ही लौट आये।

जब वे लोग आधार-वास पर पहुँचे तो यह निश्चय हुआ कि एक और मण्डली चोटी तक चढ़ने का प्रयत्न करे। इस मण्डली में ३ अंग्रेज़ और कुछ कुली थे। यह मण्डली जब कैम्प नं ३ पर पहुँची तो उसको प्रत्येक वस्तु हिम में एक फुट नीचे दबी हुई मिली। पर भाग्यवश दूसरे दिन मौसम अच्छा हो गया। इसलिए १४ कुलियों को साथ लेकर मण्डली के लोग कैम्प नं. ४ की ओर बढ़े।

ज्यों-ज्यों वे लोग आगे बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों हिम भी गहरा होता जाता था। पग-पग पर वे हिम में घुटनों तक गड़ जाते थे। अब वे एक ढालू मार्ग पर चढ़ रहे थे कि सहसा बर्फ नीचे की ओर फ़िसलने लगी और वे लोग भी उसके साथ नीचे गिरने लगे। तीनों अंग्रेज़ और एक कुली जो सबसे आगे थे एक रस्सी से बंधे हुए थे। जो बर्फ़ इनको नीचे ढकेले लिये जा रही थी भाग्यवश ठहर गयी और उन लोगों के पाँव जम गये। पर और कुली कहाँ थे? उन्होंने देखा कि १५० फुट नीचे ४ कुली और

भी जीवित थे। शेष पाँव फिसल जाने के कारण गिर पड़े थे और हिम में दब गये थे। अब प्रश्न यह था कि हिम में दबे हुए मनुष्यों को किस प्रकार निकाला जाय? नीचे उतरकर इन लोगों ने जल्दी-जल्दी बर्फ को हाथ से तथा फावड़े से हटाया। एक मनुष्य के ऊपर से बर्फ हटाई गयी, वह अभी साँस ले रहा था। दूसरा मनुष्य और निकाला गया। उसमें भी जीवन शेष था। एक और कुली मरा हुआ निकाला गया। शेष और कुली इतने नीचे दब गये थे कि उनको निकालना इन लोगों की सामर्थ्य के बाहर था।

इस घटना ने सारी मण्डली के उत्साह पर पानी छिड़क दिया, सबके चेहरों पर विषाद छा गया। अब उन्होंने लौट जाना कुशल समझा; इसलिए जैसे-तैसे वे लोग कैम्प न. ३ में लौट आये। इस दुर्घटना का प्रभाव ऐसा पड़ा कि उस वर्ष हिमालय पर चढ़ने का और कोई प्रयत्न नहीं किया गया। जो लोग मृत्यु को प्राप्त हो गये थे उनके स्मारक स्वरूप वहाँ पत्थर का एक बड़ा चबूतरा बना दिया गया।

सन् १९२४ ही में एक और मण्डली माउण्ट एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए रवाना हुई। इसने भी सन् १९२२ ई० की यात्रा के अनुसार एक आधार-वास तथा और छोटे-छोटे कैम्प स्थापित करने का आयोजन किया। कैम्प नं ३ तक कोई गड़बड़ नहीं हुई, पर उसके पश्चात् शीत इतना प्रबल हो गया कि उससे रक्षा

पान के लिए सब लोग आधार-कैम्प पर लौट गये। अब की बार सन् १९२२ ई० से भी अधिक शीत था।

हिम इतने ज़ोर से गिर रहा था कि ऊपर चढ़ने का उनका साहस नहीं होता था। इसलिए उन लोगों ने लौटने ही में बुद्धिमानी समझी।

कुछ दिनों के पश्चात् ऋतु कुछ ठीक हो गयी। अब की बार शिखर पर पहुँचने के लिए बड़े ज़ोर से तैयारियाँ होने लगीं। एक मण्डली ने २५,००० फुट की ऊँचाई पर कैम्प नं. ५ स्थापित किया। दूसरी मण्डली कैम्प नं. ६, २६,७०० फुट की ऊँचाई पर स्थापित करने में सफल हुई। इस पार्टी में दो मनुष्य थे। वे लोग ऊपर चढ़े। उनके पास ऑक्सीजन का यंत्र नहीं था। वे ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते गये त्यों-त्यों वायु इतनी पतली होती गयी कि उनको प्रत्येक पद पर ३ या ४ बार साँस लेनी पड़ती थी। १००० फुट के लगभग और ऊँचा चढ़ने पर सहसा परिवर्तन हो गया। तीन या चार बार साँस लेने की अपेक्षा अब उन्हें प्रत्येक पद पर ७, ८ और १० बार पूर्ण साँस लेनी पड़ती थी। उनमें से एक थक गया, दूसरा ८० फुट १ घण्टे में चढ़ा होगा कि वह भी थक गया और दोनों लौटे। वे लोग २८,००० फुट की ऊँचाई तक पहुँच गये थे।

जब वे लोग कैम्प नं. ४ पर पहुँचे तो उन दोनों ने देखा कि एक बार और प्रयत्न करने के लिए अभी समय है। अब की

बार महाशय मैलोरी और महाशय इरविन नामक दो सज्जन चढ़ने के लिए तैयार हुए। इनमें से मि. इरविन की आयु कुछ अधिक न थी। वे अपने साथ ६ कुली ले गये जो कि ऑक्सीजन अपने ऊपर लादे हुए थे। वे लोग सबसे ऊँचे कैम्प पर पहुँचे। एक-एक करके सारे कुली लौटा दिये गये। अन्तिम कुली महाशय मैलोरी से यह समाचार लाया,—"हम लोग अच्छी तरह से हैं और मौसम ठीक है।" वे लोग कैम्प नं. ६ में सोये और दूसरे दिन प्रातःकाल रवाना हुए।

प्रातःकाल का समय बहुत सुन्दर और निर्मल था। जो लोग नीचे के कैम्प में थे, उन लोगों को पूर्ण आशा थी कि दोनों वीर सबसे ऊँची चोटी के सिरे पर पहुँच जावेंगे और अपनी सुकीर्ति को अमर बनावेंगे। पर उनके भाग्य में कुछ और ही बदा था। दोपहर के समय एक और सज्जन ने जो कि कैम्प नं. ६ की ओर जा रहे थे देखा कि चोटी से लगभग ४०० फुट नीचे बर्फ़ पर एक छोटा सा धब्बा था। वह काला धब्बा चलने लगा और दूसरा काला धब्बा भी चला और पहले धब्बे के पास आ गया। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि ये दोनों काले धब्बे दोनों वीर यात्री थे।

वह मनुष्य कैम्प नं. ६ में गया। उसे आशा थी कि संध्या होते-होते दोनों यात्री लौट आवेंगे। उनको जिस सहायता की आवश्यकता होती वह उनको देगा। पर रात्रि व्यतीत हो गयी और उनका पता नहीं था। दूसरा दिन हुआ, उसने सीटी दी,

चिल्लाया पर किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं दिया। फिर वह नीचे के कैम्पों में कुछ सामग्री लेने को लौट आया और दो दिन के पश्चात् फिर कैम्प नं. ६ में गया। तीन दिन के पश्चात् भी प्रत्येक वस्तु जैसी वह छोड़ गया था वैसी ही उसे मिली। अब उसे कोई सन्देह नहीं रहा कि दोनों यात्री वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गये। उसने उनके शरीर को इधर-इधर बर्फ़ में ढूँढ़ा, पर कोई पता नहीं लगा और लौट आया। पता नहीं कि दोनों प्राणी सिरे तक पहुँचे अथवा नहीं। पर उनकी वीरता की प्रशंसा हिमालय के इतिहास में सदैव अमर रहेगी।

एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने के लिए लोगों के प्रयत्न अभी जारी है। सन् ३४ में भी अंग्रेज़ों के एक दल ने संसार की इस उच्चतम चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न किया। इस चढ़ाई में वायुयानों से भी सहायता ली गयी। वायुयानों के द्वारा इस शिखर के फ़ोटो लेने में भी इस दल के लोग सफल हुए। परन्तु उसके ऊपर चोटी तक चढ़ने में वे असमर्थ रहे।

कहते हैं हिमालय की इस चोटी पर देवताओं का निवास है, जो मनुष्य को उसके ऊपर चढ़ने से रोकते हैं। परन्तु मनुष्य प्रत्येक बार असफल होकर भी निरन्तर उत्साह के साथ ऊपर चढ़ता जाता है। देवताओं और मनुष्यों की इस स्पर्धा में निस्सन्देह एक दिन मनुष्य विजय-लाभ करेगा।

देहाती बैंक

[लेखक श्री मिर्ज़ा मुहमद हादी। आप को-आपरेटिव सोसाइटीज़, ज़िला उरई (यू. पी.) के इन्स्पेक्टर हैं। आपके कृषकोपयोगी लेख अक्सर "हल" में छपा करते हैं।]

हिन्दुस्तान की तीन-चौथाई से ज़्यादा आबादी ऐसी है जो देहात में रहती है और जिसकी ज़िन्दगी खेती पर ही निर्भर है। जो हालत देहात के लोगों की होगी वही हिन्दुस्तान की हालत कही जायगी। अब हमें यह देखना है कि हमारे देहात के लोगों की क्या हालत है? क्या उनको सुबह और शाम पेट भर खाना मिलता है? क्या लू के झोंकों और जाड़े की मुसीबत से बचने के लिए उनको कपड़े मयस्सर हैं? क्या उनके घर मनुष्यों के रहने के क़ाबिल कहे जा सकते हैं? और क्या उनका जीवन सुखी है और उनको आराम मिलता है? मेरे ख़याल में इन सब बातों का जवाब सिवा 'नहीं' के 'हाँ' में कोई भी न देगा।

अब दूसरा सवाल यह पैदा होता है कि उनकी हालत क्यों ख़राब है? अगर इन्साफ़ से देखा जाय तो सबसे बड़ी वजह जो हमको मिलेगी वह उनकी ग़रीबी है। यानी उनका ख़र्च ज़्यादा और आमदनी कम है, जिसकी वजह से उन पर कर्ज़ का बोझा बराबर बढ़ता जाता है। ख़र्च की ज़्यादती चाहे अधिक सूद की वजह से हो, चाहे उन झगड़ों और फ़िजूल मुक़द्दमेबाज़ी से जो आपस में तय हो सकते हैं, चाहे शादी-ब्याह और ग़मी में हैसियत से ज़्यादा

ख़र्च कर देने से, चाहे मवेशी के बेवक़्त मर जाने से या ख़रीद-फ़रोख़्त के काम में बीच के आदमी का सर्फ़ा निकल जाने से। उसी तरह उनकी आमदनी कम होने के कारण उनकी शिक्षा का न होना, उनकी बीमारी, उनके तितर-बितर खेत, अच्छी जोताई और अच्छे बीज, मुनासिब आबपाशी और ठीक मेंड़बन्दी और उनके पास दूसरा धन्धा न होना, हैं।

अगर हम उनके ख़र्च घटवाने और उनकी आमदनी बढ़ाने में कामयाब हो जायँ तो कोई वजह नहीं कि उनकी इस क़दर गिरी हुई हालत सुधर न जाय; और हिन्दुस्तान के दुखी देहाती दूसरे देशों के देहातियों की तरह सुखी न हो जायँ। अगर आप चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के देहातियों के दुख-दर्द में कमी हो तो आपको वह सब काम करना चाहिए, जो दूसरे देशों के लोगों ने किये हैं और जिससे अब वे सब बहुत ही अच्छी ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। यह तमाम काम करने के लिए मैं आपको एक बहुत बड़ा गुर या मन्त्र बताना चाहता हूँ जिसकी वजह से आपकी तरक़्क़ी, कुल काम बहुत ही आसानी से हो सकते हैं। इस गुर का या मन्त्र का नाम सहयोग या संगठन है। अगर आप सब क़सम खा लें कि आप सब एक दूसरे की मदद करेंगे, दूसरों का फ़ायदा पहले चाहेंगे और अपना फ़ायदा पीछे, आपस में सबको बराबर जानें और किसी को ऊँचा या नीचा न समझेंगे और एक दूसरे के साथ हमदर्दी या मुहब्बत का बर्ताव करेंगे तो मैं यक़ीन दिलाता हूँ कि दो ही साल में इस पर अमल

करने से आपकी हालत में ज़मीन-आसमान का फ़र्क हो जायगा ; यह बात ऐसी नहीं है कि इसको कुछ लोग कर सकते हों और कुछ लोग न कर सकते हों। इसको तो सब ही कर सकते हैं, क्योंकि इसमें कोई ख़र्च नहीं है। हाँ, यह बात अवश्य है कि कुछ लोग ऐसा करने के लिए राज़ी न हों। तो ऐसे लोगों को जो इस वक़्त राज़ी नही हैं छोड़ देना पड़ेगा। ये लोग बाद में हम लोगों में आकर ख़ुद ही मिल जायँगे। सहयोग का भाव आज मौजूद है और उसी के द्वारा अब अक्सर काम हुआ करते हैं। जैसे छप्पर उठाना खेत काटना आदि-आदि। लेकिन फ़र्क इतना है कि जहाँ वह काम ख़तम हुआ बस सहयोग भी बन्द हुआ। लेकिन हमारे बताये हुए सहयोग में आप किसी वक़्त भी इस सहयोग को छोड़ नहीं सकेंगे और अगर छोड़ दिया तो वह तमाम फ़ायदे न उठा सकेंगे जो इस संगठन में रहकर आपको पहुँचते रहते।

गाँव किसको कहते हैं? आप कहेंगे कि जहाँ सौ-सवा सौ घर बन जायँ वही गाँव है। मैं आपसे पूछता हूँ कि ये सब घर एक जगह पर क्यों बनाये जाते हैं? ऐसा क्यों नहीं होता कि एक घर दूसरे घर से मील डेढ़ मील के फ़ासिले पर बनाया जाय, अपने-अपने घर अपने-अपने खेतों में बनाये जायँ। तो शायद आप यह जवाब देंगे कि अगर ऐसा किया जाय तो हम लोग दूसरे ही दिन लूट लिये जायँ। लोग हमारे जानवर खोलकर ले जायँ और घर के अन्दर का तमाम माल छिन जाय।

बस, आपके जवाब से मेरा मतलब निकल आया। मैं चाहता हूँ कि आपका सहयोग सिर्फ़ गाँव के बसाने पर ही ख़तम न हो जाय, बल्कि रोज़ के हर काम में जारी रहे। यह इस तरह से हो सकता है कि गाँव में सीमित ज़िम्मेदारीवाले बैंक खोले जायँ, जिसमें गाँव के वे सब लोग शरीक किये जायँ जो इस बात की क़सम खायें कि वे आपस में ईमानदारी, सचाई और मेल से रहेंगे और एक दूसरे की मदद और उसकी हालत सुधारने में अपनी शक्ति भर मदद देंगे।

जब यह बैंक बन जाय और उसकी रजिस्ट्री हो जाय तब यह बैंक अपने मेम्बरों का सुधार करने के लिए थोड़ा-थोड़ा काम शुरू करे। जैसे अपना काम ठीक वक़्त पर और क़ायदे से करना, मितव्ययिता और बचत की आदत डालना और अपव्यय को रोकना, बुरे रिवाज़ों को दूर करना, फ़िजूल की मुक़द्दमेबाज़ी से बचना और जहाँ तक हो सके, गाँव के झगड़े गाँव ही में तय करना, मेम्बरों और उनके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना, गाँव में सफ़ाई रखना, मकानों को हवादार और रोशन बनाना, दवाइयों का बक्स रखना, अच्छी खेती करना, जानवरों की हालत और नस्ल को अच्छा बनाने की कोशिश करना और बैल-भैंसों का बीमा कराना तथा देहाती उद्योग-धंधों को तरक्की देना, मुनासिब सूद पर रुपये का इन्तज़ाम करना और धीरे-धीरे बैंक में पूँजी इकट्ठा करना, बाहरी क़र्ज़ों को बन्द करना, मेम्बरों को ऐसे कामों के लिए क़र्ज़ा देना जिससे उनकी आमदनी बढ़े। मेम्बरों की पैदावार को इकट्ठा बेचने का इन्तज़ाम

करना और रोज़ाना ज़रूरतों की चीज़ों को इकट्ठा ख़रीदकर मेम्बरों के हाथ उचित मूल्य पर बेचना इत्यादि ।

इस स्कीम को सुनकर आप घबड़ा गये होंगे और कहते होंगे कि अरे ! ये बातें कहाँ हो सकती हैं । बस यही हमारी कमज़ोरी है जो हमको मुसीबत के गढ़े में गिराये हुए है । हम हाथ-पैर हिलाना नहीं चाहते और यह चाहते हैं कि छप्पर फटे और दौलत का ढेर लग जाय । हम अपने बुरे तरीक़ों को बदलना नहीं चाहते, मगर चाहते हैं कि मालदार हो जायँ । हालाँकि बुरे तरीक़ों पर चलकर दौलत का रहना ही मुश्किल हो जाता है, और दौलत का आना कैसे ? हम ज़माने के साथ चलना नहीं चाहते, फिर भी चाहते हैं कि और कौमों की तरह हम भी खुश-हाल हो जायँ । हम हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हुए हैं और ऐसा करने से जो मुसीबतें हम पर टूटती हैं उनको हम अपनी बदकिस्मती बताते हैं । यही हमारी कम्बख़ती है और यही हमारी बदक़िस्मती है । हमारे पेट में दर्द है, हमारा जिस्म रोगी हो गया है । मगर हम किसी डाक्टर के पास जाना नहीं चाहते । अगर क़िसी देखनेवाले को हमारे आलस्य पर तरस आता है और वह कोई ऐसी बात बताता है जिससे हमारी तकलीफ़ और हमारा रोग दूर हो जाय तो हम उसकी बात मानने से इनकार कर देते हैं । किसी गवर्नमेंट के पास इतना पैसा नहीं हो सकता कि वह आपका काम करने का इन्तज़ाम कर सके । आपको अपना काम खुद ही करना होगा और अपने ही पैरों पर खड़ा होना होगा । गवर्नमेंट

की तरफ़ से कोई ऐसा इन्तज़ाम नहीं हो सकता कि कोई शख़्स आपको अपनी पीठ पर लादकर एक बुरी जगह से दूसरी अच्छी जगह पहुँचा दे। हाँ, यह मुमकिन है कि शुरू में जब कि आप कमज़ोर हों, और आपके पैर लड़खड़ाते हों तो वह अपने हाथ का सहारा देकर आपके गढ़े से बाहर निकाल दे। मगर यह भी उसी वक़्त जब आप भी बाहर निकलना चाहते हों। दूसरी क़ौमें बहुत आगे निकल गयी हैं, मगर आप अब तक वहीं पड़े हुए हैं, जहाँ सौ बरस पहले पड़े हुए थे।

यह स्कीम, जो मैंने आपको सुनायी है और जिसको आप शायद एक लंबी स्कीम कहते होंगे, मेरे निकट एक छोटी-सी स्कीम है, और यही छोटी स्कीम आपको भी शुरू करनी है, हालाँकि और क़ौमें इसकी हज़ारों गुनी लंबी स्कीमों पर अमल कर चुकी हैं। और यही वजह है कि वे बेहद मालदार और दौलतवाली हैं। मिसाल के तौर पर बीमा ही को ले लीजिये। विलायत के मुल्कों में इनसान का बीमा जानवरों का बीमा, माल का बीमा, फ़सलों का बीमा, कारख़ानों का बीमा, तिजारती जहाज़ों का बीमा, मोटर का बीमा, शादी-ब्याह और शिक्षा आदि आदि का बीमा होता है। और इस बीमा की वजह से बीमा की हुई चीज़ की हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम भी एक हुनर हो गया है। अमरीका में बड़े-बड़े कारख़ाने, अलावा और बातों के आग का भी बीमा कराये हुए हैं। इन कारख़ानों से मशीनों के ऊपर पानी के नलों का जाल दौड़ा हुआ है और इन नलों में थोड़े-थोड़े फ़ासले पर

एक इंच से कई इंच तक छेद हैं। वे जल्द पिघलनेवाली धातु के ढकनों से बन्द रहते हैं। अगर कारख़ाने के किसी हिस्से में आग लग जाय तो ये पिघल जायँगे और आग के ऊपर पानी गिरने लगेगा और इस तरह से आग बुझाने का काम ख़ुद ही शुरू हो जायगा। चाहे आग दिन में लगे चाहे रात को, चाहे पहरेवाले जागते हों चाहे सोते हों।

मगर मैंने अपनी स्कीम में सिर्फ़ बैल और भैंस ही के बीमे को लिया है। यह इसलिए कि काश्तकारों की तबाही की एक वजह उनके जानवरों की अचानक बेवक्त मौत है। फ़र्ज़ कीजिये कि कोई काश्तकार १५०) रु० में बैल की एक जोड़ी लाया। इन बैलों ने अभी कुछ ऐसा काम भी नहीं दिया था कि एकाएक एक दूसरे के बाद मर गये। अब बतलाइये कि वह बेचारा काश्तकार कहाँ का रहा? इसको १५०) रु० तो एक बार कर्ज़ मिल चुके थे। अब दूसरा कर्ज़ा कैसे पाये कि दूसरी जोड़ी ख़रीदे और यही कर्ज़ा अदा कहाँ से हो। अगर उसने बीमा कराया होता, जानवरों की क़ीमत पर एक पैसा फ़ी रुपये के हिसाब से छः माही किश्त देता होता, तो उन बैलों के मरने पर बैंक उसको लगभग ११०) रु० दूसरी जोड़ी ख़रीदने के लिए ज़रूर देता और यह रुपया उसको कभी वापस न करना पड़ता। मेरी इस स्कीम की हर बात में फ़ायदे ही फ़ायदे हैं। उठिये, हिम्मत कीजिये, कमर बाँधिये और अपनी हालत को अपने आप दुरुस्त कीजिये। देहाती बैंक के ज़रिये से

देहातवालों को अपनी हालत सुधारने में सलाह-मशविरा और जायज़ मदद देने के लिए हर सूबे में देहाती बैंक का महकमा खुला हुआ है, जिस पर गवर्नमेंट के लाखों रुपये सालाना ख़र्च होते हैं। जो बात आपको पूछना हो अपने ज़िले के कोआपरेटिव इन्स्पेक्टर साहब से मिलकर पूछ सकते हैं।

ख़ुदाई का मास्टरपीस

(लेखक—श्री व्रजमोहन वर्मा। आप संयुक्त प्रान्त के रहनेवाले थे। बड़े प्रतिभावान सम्पादक थे। आपने हास्य-रस की अच्छी रचनाएँ की हैं। आप 'विशाल भारत' के सहकारी सम्पादक थे। आपकी असामयिक मृत्यु से एक अच्छा होनहार लेखक उठ गया।)

जब आदम और हव्वा ने अदन के बग़ीचे में ख़ुदा के मना किये हुए फल को चुराकर खाया, तो ख़ुदा को बड़ा गुस्सा आया, और उसने इन दोनों गुनहगारों को ज़मीन पर ढकेल दिया। आदम और हव्वा को ज़मीन पर गिरने का बड़ा रंज हुआ। कहाँ स्वर्ग का सुख और सौन्दर्य और कहाँ दुनियाँ की सूखी धरती! अपने पुराने दिनों की याद करके दोनों ज़ार ज़ार रोते और पछताते थे।

उनका रोना और पछताना देखकर ख़ुदा को भी उन पर तरस आया; इसलिए उसने इसी ज़मीन पर उन दोनों के आराम के सारे सामान बनाये। लेकिन फिर भी आदम और हव्वा के जीवन में विचित्रता और रंगीनी न थी। उनके जीवन में विचित्रता और रंगीनी

लाने के लिए खुदा ने एक-एक करके नौ रसों की सृष्टि की।

आदम और हव्वा को अब अपने इसी जीवन पर सन्तोष करना पड़ा। वे दोनों रोज़ नियम से खुदा की इबादत करते थे। ज़िन्दगी भर इबादत करने पर खुदा उनपर खुश हुआ, और बोला—माँगो, क्या माँगते हो?

आदम ने कुछ कहने के लिए ज़बान खोली ही थी कि हव्वा बोली—ऐ खुदा, मैं तेरी खुदाई का करिश्मा देखना चाहती हूँ। तू कोई ऐसी चीज़ बना जो तेरी सारी दुनियाँ से निराली हो, जिसमें नवों रसों का मेल हो, जिसे देखकर खुशी हो, जिसे देखकर रंज हो, जिसे देखकर हँसी आये, जिसे देखकर रुलाई आये, जिससे मुहब्बत पैदा हो, जिससे नफ़रत पैदा हो, जिसमें वीरता हो, जिसमें कायरता हो। ग़रज़ यह कि वह दुनियाँ की सारी चीज़ों में अजीबो-ग़रीब हो। खुदा ने कहा—तुम दोनों की उम्र अब बहुत थोड़ी बाकी रह गयी है। अगर मैं ऐसी चीज़ बनाऊँ भी, तो उसे बनाने में इतने दिन लगेंगे कि तुम लोग उसका लुत्फ़ न उठा सकोगे, इसलिए कुछ और माँगो। आदम ने भी हव्वा को समझाया। पर उसने कहा—कुछ परवाह नहीं, अगर हम दोनों उसका मज़ा न उठा सकेंगे तो हमारी औलाद तो उसका मज़ा चख सकेगी।

अब खुदा सोच में पड़ गया कि वह कौन-सी चीज़ बनावे जिसमें हव्वा की सारी बातें मिल सकें। वह सोचता रहा, सोचता

रहा। दिन बीते, हफ़्ते बीते, वर्ष बीते, सदियाँ बीतीं ;—लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये। फिर भी ख़ुदा की समझ में न आया कि वह ऐसी अजीबो-ग़रीब चीज़ क्या बनाये? यहाँ तक कि जार्ज स्टीफेन्सन् ने रेल के इंजिन का आविष्कार कर डाला। इस इंजिन को देखकर एकाएक ख़ुदा को एक विचार सूझा, और उसने कुछ ही दिन में हव्वा की मनचाही चीज़ बनाकर तैयार कर दी, जिसका नाम रखा गया 'थर्ड क्लास'।

(२)

'थर्ड क्लास' में सचमुच हव्वा की कही हुई हर हीज़ मौजूद है। उसे देखकर हँसी आती है, उससे ख़ुशी होती है, वह सैकड़ों को वीर बनाकर मारने-मरने पर तैयार कर देती है, वह लाखों को कायर बनाकर हर तरह का अपमान सहने को मज़बूर करती है। उसमें भयानकता है, उसमें शान्ति है। उसमें हर एक रस है, हर एक रूप है, हर एक रंग है। ग़रज़ यह कि थर्ड क्लास ख़ुदाई का 'मास्टरपीस' है।

भला, यह कैसे संभव था कि ऐसी अद्भुत चीज़ बने और वह लोकप्रिय न हो? थर्ड क्लास बढ़ा और ख़ूब बढ़ा। आज संसार में सबसे अधिक प्रचार उसी का है। करोड़ों आदमी उसके भक्त और सेवक हैं। रेल से बढ़कर वह गाड़ी, इक्का, तांगा, सिनेमा, बायस्कोप, थियेटर,—हर जगह हर चीज़ में फैल गया। किन्तु उसका पूरा विकास स्टीमर या जहाज़ पर ही हुआ है।

सबसे पहली बात यह है कि स्टीमर पर पहुँचकर थर्ड क्लास के मुसाफ़िर को 'डेक पैसेंजर' का लक़ब मिल जाता है। 'डेक' शब्द का अर्थ है जहाज़ का तला या खण्ड, और 'पैसेंजर' शब्द के मानी है 'यात्री'। फ़र्स्ट-सेकेण्ड क्लासवालों का स्थान भी जहाज़ के किसी न किसी डेक पर ही होता है, पर उन्हें 'डेक-पैसेंजर' नहीं कहते।

इस थर्ड क्लास की पूरी शान देखने के लिए आपको यूरोप या अमेरिका जाने की ज़रूरत नहीं है। आप मेरे साथ ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नैविगेशन कम्पनी के स्टीमर पर कलकत्ते से रंगून तक की यात्रा कर डालिये, आपको सिर्फ़ चौदह रुपये में खुदा के इस सबसे बड़े करिश्मे का मज़ा मिल जायगा।

(३)

स्टीमर नौ बजे छूटनेवाला है। चूंकि डेक पैसेंजर के लिए कोई स्थान रिसर्व नहीं होता, इसलिए अच्छी जगह मिलने की आशा से छः बजे सवेरे ही आउटरम घाट पर पहुँचता हूँ, तो देखता हूँ कि लोग तीन ही बजे रात से आकर घाट पर धूनी रमाये बैठे हैं, यद्यपि स्टीमर का कहीं पता भी नहीं।

घाट पर पहुँचकर एक और बड़ी बात का ज्ञान होता है। वह यह कि स्टीमर के थर्ड क्लास का हर एक यात्री पैदाइशी मुज़रिम और 'स्मगलर' होता है,—कम से कम कस्टम-विभाग की तो यही राय है। डेक का टिकट खरीदते ही इस बात की संभावना पैदा

हो जाती है कि आप अफ़ीम, कोकिन आदि वर्जित वस्तुओं को चोरी से ले जा रहे हैं, इसलिए कस्टमवाले आपकी एक-एक चीज़ की तलाशी लेते हैं। फर्स्ट या सेकेण्ड क्लास का टिकट लेने पर आपके मुज़रिम होने की संभावना अपने आप लोप हो जाती है, फिर कोई नहीं पूछता।

आठ बजे घाट का फाटक खुलता है, और स्टीमर पर दो सीढ़ियाँ लगी हुई दीख पड़ती हैं। एक सीढ़ी बिलकुल खाली नज़र आती है, उस पर इक्के-दुक्के मुसाफ़िर ही चढ़ते दीख पड़ते हैं; मगर दूसरी सीढ़ी पर ऐसी दौड़ादौड़ होती है मानो नादिरशाह के सिपाही दिल्ली की लूट के लिए पिल पड़े हों। माल-असबाब लादे कुली, बोरिया-बकुचा लटकाये यात्री और बच्चे-कच्चों को घसीटती हुई स्त्रियाँ,—सबके सब जी-जान छोड़कर सीढ़ी पर भाग रहे हैं। पूछने पर मालूम होता है कि पहली सीढ़ी है फर्स्ट-सेकेण्डवालों का स्वर्ग-सोपान और दूसरी डेक पैसेंजरों की नरक-नसेनी! ऊपर पहुँते ही लोग एक-एक कम्बल, दरी, चटाई या टाट बिछाकर और उसे चारों ओर से अपने असबाब से घेरकर जगह पर कब्ज़ा जमा लेते हैं।

जहाज़ नौ बजे छूटता है। मगर इस एक घंटे के बीच में जो नाटक डेक पर होता है वह अद्‌भुत है। किसी का बच्चा खो गया है, किसी का बिस्तर गुम हो गया है, किसी का पैर कुचल गया है, किसी की सुराही फूट गयी है, किसी को बिछोह का दुख है,

किसी को यात्रा की ख़ुशी है—ग़रज़ कि हर आदमी के पास रोने, हँसने, चीखने, चिल्लाने और हाय-तोबा मचाने का एक न एक कारण मौजूद है, और वह उस कारण का पूरा-पूरा उपयोग कर रहा है।

जहाज़ चलने लगता है। डेक-पैसेंजरों का शोर-गुल भी ठण्डा पड़ने लगता है। देखता हूँ कि डेक मुसाफ़िरों के तीन लोक हैं। उनकी एक दुनियाँ मेरे सर के ऊपर बसी है, और दूसरी मेरे पैरों के नीचे आबाद है। मैं मध्य-मार्ग का पथिक हूँ, मेरा स्थान बीच के डेक पर है। टालस्टाय ने एक कहानी लिखी है जिसका नाम है, 'आदमी को कितनी भूमि चाहिये?' इस कहानी में उसने सैकड़ों मील धरती नापकर अन्त में यह बताया है कि हर आदमी को सिर्फ़ साढे-पाँच हाथ जगह (क़ब्र भर को) चाहिए। मगर स्टीमर कंपनी टाल्सटाय से भी कहीं आगे बढ़ी हुई है; क्योंकि देखता हूँ कि डेक मुसाफिरों में अनेक अभागों को मुश्किल से साढ़े चार फ़ीट जगह मिल सकी है।

मुसाफ़िरों पर नज़र डालने से जान पड़ता है कि डेक पर कोई अखिल एशियाई कान्फ़रेन्स हो रही है, जिसमें ईरान, काबुल, कन्धार, पंजाब, युक्त-प्रान्त, बिहार, बंगाल, आसाम, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिल-नाड, उड़ीसा, लंका, बर्मा, मलाया, श्याम, चीन, जापान आदि देशों और प्रदेशों ने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। उनमें स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी हैं।

डेक की दुनियाँ कुछ अजीब चहल-पहल की दुनियाँ है।

एक ओर सूरती मुसलमानों के एक दल ने ताश का अड्डा जमा रखा है, दूसरी ओर एक भाटिया परिवार के घरेलू जीवन का नक्शा फैला है। लड़के खेल रहे हैं, माताएँ बच्चों को दूध पिला रही हैं, और उनके भोले पति-देव तरकारी के लिये आलू-परवल छील रहे हैं। एक पढ़े-लिखे सज्जन 'स्टेट्स्मैन' पढ़ रहे हैं, कुछ गुजराती छोकरे सिनेमा के किसी पत्र में देख-देखकर 'एक्ट्रसों' के सौन्दर्य का मूल्य आँकने में व्यस्त हैं, और कुछ लोग गप-शप में मस्त हैं। जहाज़ के कुछ ख़लासी केला, नींबू, ताश और सोड़ा-लेमोनेड़ बेचने की कोशिश में हैं। एक पाई का केला एक पैसे में, धेले का नींबू दो पैसे में, छः पैसे के ताश चार आने में और दो पैसे का लेमोनेड दो आने में बिक रहा है। हर चीज़ थर्ड क्लास है, और हो क्यों नहीं? आख़िर हम भी तो थर्ड क्लास के ही मुसाफ़िर हैं!

सहसा संगीत सुनाई पड़ता है। चारों ओर से गाने की आवाज़ आती है। देखता हूँ कि यह अखिल एशियाई कान्फ़रेन्स वास्तव में अखिल एशियाई संगीत-सम्मेलन ही है। जान पड़ता है कि हर एक प्रान्त और हर एक देश ने अपने-अपने तानसेनों को चुन-चुनकर ही यहाँ भेजा है। एक क़ाबुली अपने दरदरे स्वरमें भैरव राग आलाप रहा है। एक चीनी लड़की अपनी भाषा में कुछ गुनगुना रही है। एक ठिकाने पर दो-तीन बिहारी भाई उंगलियों से कान बन्द करके बिरहा गा रहे हैं। एक दूसरी जगह चार-पाँच हिन्दुस्तानियों का एक दल बड़े जोश-ख़रोश के साथ आल्हा पढ़ रहा है।

यह जानकर प्रसन्नता होती है कि जहाज़ी कंपनी को इस बात का पता है कि 'डेक-पैसेंजर' नामधारी जीव भी कुछ खाता है। इसलिये जहाज़ पर हलवाई की एक दूकान भी है। पाखाने और नल के पास एक छोटी कोठरी में हलवाई देवता विराजते हैं। उसीमें उनका चूल्हा है, भण्डार है, दूकान है। भण्डार के लिये दो बड़े-बड़े लोहे के टब हैं, जिनपर काला कोलतार पुता है। उन काले-काले गन्दे टबों को देखकर ही कुछ खाने की इच्छा अपने आप दूर हो जाती है।

बरसात के दिन हैं; आसमान पर बादलखाँ की तबीयत मज़े में आती है और वे भड़भड़ाकर बरस पड़ते हैं। डेक की यात्रा का लुत्फ़ तो बरसात ही में है। सबसे ऊपरवाले डेक के यात्रियों पर छाया के लिए है, केवल कैनवास का तिरपाल। किन्तु कहाँ भादों के दल-बादल मेघ और कहाँ बेचारा बी. आई. कंपनी का तिरपाल। थोड़े ही देर में ऊपर के यात्रियों का साज-सामान ही नहीं, शरीर तक तर-बतर हो जाता है। सोचता हूँ कि फ़र्स्टक्लासवालों को यह सुख कहाँ नसीब?

मेल-स्टीमर होने के कारण जहाज़ बहुत तेज़ी से जा रहा है। गंगा का पीला पानी हरा हुआ, फिर नीला हुआ, फिर एक दम काला हो गया। अब चारों तरफ़ पानी ही पानी है। बंगाल की खाड़ी आ गयी। समुद्र में काली-काली ऊँची तरंगें उठ रही हैं। चारों ओर समुद्र आसमान से 'शेकहैण्ड' करता दीख पड़ता है।

अभी तक गाना जारी है, एक दर्जन से अधिक भाषाओं में। मैं सोचता हूँ क्या ये सब लोग एक ही भाषा नहीं बोल सकते? क्या इनके गलों से एक ही आवाज़ नहीं निकल सकती? एक विशाल तरंग स्टीमर से टकराकर हुँकार मारती है, मानों कह रही है—हाँ, निकल क्यों नहीं सकती, देखो, मैं अभी, सभी के गलों से एक ही स्वर निकाले देती हूँ। तरंग बढ़ने लगती हैं, जहाज़ ज़ोर से हिलने-डुलने लगता है। यह देखिये, अब तो सचमुच ही चीनी-जापानी, हिन्दुस्तानी-बंगाली, उड़िया-गुजराती—सभी के कंठों से एक ही ध्वनि एक ही आवाज़ निकलने लगती है; वह है कै करने की आवाज़। अंधेरा हो जाता है, लोग सो जाते हैं।

सबेरा होता है, मगर आज की डेक की दुनियाँ, कल की दुनियाँ से बिलकुल निराली है। आज चहल-पहल नहीं है, गाना-बजाना नहीं है, गप-शप नहीं है, खान-पान नहीं है। उसके बजाय आज मनहूसियत है, मुर्दनी है, सन्नाटा है। सब चुपचाप मुर्दों की भाँति मुँह लपेटे पड़े हैं,—कोई सीधा, कोई उलटा। कल इसी डेक पर बाज़ार या मेले का शोर था, आज मरघट या क़ब्रस्तान की ख़ामोशी है। सारा दिन ऐसे ही बीतता है। आज लहरों का ताण्डव-नृत्य और गम्भीर गर्जन ख़ूब ज़ोर पर है।

प्यास लगती है, बटलर से पूछता हूँ, बर्फ़ मिलेगी? जवाब मिलता है, बर्फ़ सिर्फ़ फ़र्स्ट-सेकेण्ड क्लासवालों को ही मिल सकती है; डेक पैसेंजरों को नहीं,—दाम देने पर भी नहीं। सोचता हूँ

डेकवालों को बर्फ़ क्यों नहीं मिलती? कोई कारण समझ में नहीं आता, सिवा इसके कि कम्पनी शायद यह समझती है कि डेक-यात्री को ठण्डक पहुँचाने के लिए बरसात का पानी और समुद्र की लहरों से उड़े हुए नमक के छींटे ही काफ़ी हैं। उन्हें बर्फ़ की क्या ज़रूरत है?

बीच-बीच में पानी बरस जाता है जिसकी बौछार बीच के डेक पर बिस्तर तक पहुँचती है। मगर किया क्या जाय, मेरे पास इधर-उधर सरकने की जगह नहीं है, और कैनवास के पर्दों में पानी रोकने का सामर्थ्य नहीं है। ख़ैर, दिन कटता है, रात आती है। लोग सो जाते हैं, मगर मुझे नींद नहीं आती। अब बादल छट गये हैं, ख़ूब चाँदनी खिली है। चाँदनी में नाचती हुई तरंगों का नृत्य, जगह-जगह पर उड़ता हुआ सफ़ेद झाग, उड़नेवाली मछलियों का उड़ना और गिरना,—ये सब मिलकर एक अजीब समाँ पैदा कर देते हैं।

सबेरा होता है। पानी के रंग में कालेपन की कमी भूमि की निकटता प्रकट करती है। डेक पर सहसा फिर ज़िन्दगी आती है। कल जितने आदमी निश्चल पड़े थे, आज वे सहसा सजग हो उठे। जान पड़ता है, किसी मसीहा ने अपना जादू का डण्डा छुआकर इन मुर्दों को फिर ज़िन्दा कर दिया है। थोड़ी देर के बाद झुण्ड की झुण्ड समुद्री चिड़ियाँ आ-आकर जहाज़ के ऊपर मँड़राने लगती हैं, और दूर किसी पगोड़ा का ऊँचा शिखर दीख

पड़ता है। उसे देखकर डेक-दुनियाँ में फिर वही कोलाहल, फिर वही हंगामा हो जाता है। कोई माल-असबाब बाँधता है, कोई प्रसन्नता से गाता है, और कोई चौबीस घण्टे के व्रत के बाद उदर-देव की पूजा कर रहा है। फैले हुए बिस्तर सिमटने लगते हैं, खुले हुए बक्सों में ताले पड़ते हैं।

दो बजे जहाज़ रंगून पहुँच जाता है। सीढ़ियाँ लगाई जाती हैं, और मुसाफ़िर उतरते हैं। नीचे उतरकर मैं समझता हूँ कि चलो, डेक-यात्रा या डेक-यातना ख़त्म हुई। मगर नहीं डेक पैसेंजर इतने से ही छुटकारा नहीं पाता। बिदाई की लात तो अभी बाकी ही है। देखता हूँ कि डेक संसार के सारे प्राणी अपने माल-असबाब के साथ एक कटहरे में बन्द हैं। यहाँ पुलिस हर यात्री से उसका नाम, बाप का नाम, जाति, पेशा आदि इतनी बातें पूछती है मानो उसे यात्री से सगाई-सम्बन्ध करना हो! फ़र्स्ट-सेकेण्ड क्लास के यात्री इस झंझट से बरी होते हैं। पुलीस को उनके बापों की ज़रूरत नहीं होती। अब डाक्टर आते हैं, हर एक डेक यात्री को टीका लगाते हैं और उसके कपड़ों में भाप देते हैं।

अधिकारियों का ख्याल है कि थर्ड क्लास का यात्री बीमारी के कीड़ों का ऑनरेरी-प्रचारक है। कहीं वह बर्मा में इन कीटाणुओं का प्रचार न कर दे, इसलिए यह कार्रवाई की जाती है। मान लीजिये कि आपके शरीर में दुनियाँ-भर के संक्रामक रोगों के कीटाणु भरे पड़े हैं, पर यदि आप खनखनाते हुए इकसठ रुपये ख़र्च करके

सेकेण्ड क्लास का टिकट ख़रीद लें, तो बिना किसी इलाज के ही आपकी रोग-प्रसारिणी शक्ति अपने आप नष्ट हो जायगी। तब रंगून में न तो आपके टीका ही लगाया जायगा और न आपके कपड़े ही भपाये जायँगे।

एक बात और भी मज़े की है। रोगों की रोकथाम की यह कार्रवाई केवल बर्मा जानेवाले डेक यात्रियों के साथ ही की जाती है। बर्मा से कलकत्ते लौटनेवाले यात्रियों के न तो टीका दिया जाता है, और न उनके कपड़े ही भपाये जाते हैं। कदाचित् हमारे अधिकारी हम भारतीयों के लिए रोगों को आवश्यक समझते हैं, तभी तो उन्होंने संसार भर के लोगों को भारत में तरह-तरह की बीमारियों के कीड़े लाने का अधिकार दे रक्खा है।

दौड़ना-धूमना, चढ़ना-उतरना, हँसना-रोना, गाना, वमन करना, लड़ना-भिड़ना, भूखा रहना, पानी में भीगना, धूप में तपना, हवा में सूखना, टीका लगाना और अन्त में गरमागरम भाप से गुज़रना इत्यादि रंग-बिरंगी क्रियाओं के बाद डेक यात्रा का पर्व समाप्त होता है।

थर्ड क्लास में कलकत्ते से रंगून तक की यात्रा करने के बाद भी यदि व्यक्ति थर्ड क्लास को 'खुदाई का मास्टरपीस' नहीं मानता, तो समझ लीजिये कि वह एकदम थर्ड क्लास आदमी है!

बदला

[लेखक—श्री राम शर्मा। आप कलकत्ते से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'विशाल भारत' के संपादक तथा सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं। आपको शिकार से बहुत प्रेम है। हिन्दी में शिकार साहित्य के आप ही जन्मदाता हैं। इनका शिकार-संबंधी लेख तथा पुस्तकें पढ़ते समय ऐसा मालूम पड़ता है कि सचमुच पाठक के सामने शेर बैठा है।]

मानव हृदय, महासागर के जल के समान, प्रत्येक देश में समान ही है। विरोधात्मक भावनाएँ तो महासागर की तरंगों के समान हैं, जो आपस में लड़-भिड़कर फिर एक ही जाती हैं। जब मानव समाज का स्रोत एक है, तब वास्तविक गुण भी एक हुआ। हाँ, परिस्थिति के कारण सत्, तम और रज के अंशों में भेद अवश्यम्भावी है। अवस्था अथवा स्थिति के कारण किसी गुण-विशेष का प्राधान्य हो जाता है, इसलिए प्रत्येक समाज में भले और बुरे दोनों प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं, और इसी कारण प्रेम, द्वेष तथा सिद्धान्त के लिए मर मिटने की आकांक्षा और स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रेम किसी समाज-विशेष अथवा देश-विशेष की बपौती नहीं है, और न इनका सम्बन्ध अमीरी और ग़रीबी से है। गोरे और काले, पीले और भूरे चमड़ों के भीतर भगवान की एक ही निधि—हृदय—छिपी हुई है। वे लोग बड़ी भूल करते हैं, जो मानव-समाज के मूल-स्रोत को भुलाकर बाह्य-आडम्बर को ऊँच नीच की कसौटी बनाते हैं।

दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीका के उत्तरी भाग में, जम्बाज़ी नदी के निकटवर्ती प्रदेश में, मरूबिया नामक एक अफ्रीकन जाति रहती है। यह जाति अपनी भीरुता के लिए बदनाम है, पर असभ्य और कायर कही गयी मरूबिया जाति के लोग अपने भरण-पोषण के लिए खंजर और भाले चलाने में प्रवीण हैं, और शायद सभ्य लोगों से कहीं अधिक ईमानदार हैं। जंगल में जैसे हिरन, बाघ और बन्दर विहार करते हैं, वैसे ही वे भी वहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक विचरते हैं। यह भी परमात्मा की एक सृष्टि है। हाँ, उन्हें यह नहीं आता कि वे अपने प्रदेश को छोड़कर दूसरों की रोटी छीनें, अथवा अपनी रीति-रिवाज को दूसरों से मनवावें। यह काम तो आजकल सभ्य कहलानेवाली जातियों का ही है।

अब से आठ-नौ वर्ष की बात है। प्रसिद्ध शिकारी चैडविक मरूबिया जाति के लोगों के एक गाँव के समीप जाकर ठहरे। चैडविक महाशय अपने शिकार की मुहिम पर थे। सायंकाल को वे अपने तम्बू में बैठे थे कि गांव के समीप से आतंक-जन्य कोलाहल सुनाई पड़ा। तम्बू से बाहर आये तो देखा कि गाँव की स्त्रियाँ झील के पनघट से बिलखती, चिल्लाती, और डरी हुई गाँव की ओर भागी आ रही हैं। उनकी चिल्लाहट, सुनकर गाँव के आदमी पनघट की ओर बढ़े। चैडविक महाशय भी कौतूहलवश उधर गये जाकर देखा तो मालूम हुआ कि एक नवयुवती को एक मगर पकड़ ले गया। घाट पर ज्यों ही वह जलपात्र भरने झुकी—अभी घड़े ने पानी को छुआ ही

था—कि सामने से पानी फटा और मुँह फाड़कर एक मगर उस पर लपका। युवती की एक चीख़ निकली और 'चच' शब्द के साथ मगर उसको लेकर गहरे पानी में पैठ गया। उसका घड़ा भी वहीं डूब गया, मानो उस मानिनी के बिना वह अपना मुँह दिखाना लज्जास्पद समझता था।

वह युवती हाल में ही विवाह-सूत्र में बँधकर मुतशिवी नामक व्यक्ति के यहाँ आयी थी। उसे अभी अपने सुहाग जीवन का कुछ विशेष अनुभव नहीं हुआ था। पेड़ का सहारा पाकर जिस प्रकार वल्लरी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती है, उसी प्रकार अपने नवीन सहारे मुतशिवी को पाकर उस युवती के नवीन जीवन में कोंपलें निकली थीं; पर मुतशिवी के घर की वह जगमगाती ज्योति मनहूस मगर ने बुझा दी। मुतशिवी को जब यह समाचार मिला कि मगर उसकी प्रियतमा को ले गया, तब वह एकदम विवेक-शून्य-सा हो गया, और दोनों हाथों से अपना सिंर पकड़कर सिसक-सिसककर रोने लगा। इस विपत्ति-वज्रपात की उसे स्वप्न में भी आशंका न थी। अकस्मात् उसकी जीवन-नौका डूब गयी। इस समय वह अपने आपको मुर्दे से भी अधिक तुच्छ समझ रहा था। आख़िर ध्येयहीन तथा सुखहीन जीवन से क्या लाभ? इसी मर्मस्पर्शी संकट की चोट से वह कुछ देर बेसुध-सा बैठा रहा, थोड़ी देर बाद उसकी आकृति बदली। झुका हुआ सिर ऊपर को उठा। हाथों को उसने घुटनों पर रक्खा। उसकी आँखें अध-निकले आँसुओं को निगलने लगीं।

मेघवर्ण ललाट के नीचे अंकित आँखों में बिजली चमकी, और खड़े होकर वह गरजा—"वह मगर मूर्ख है! उसने मेरी स्त्री—नेमातुशा—को मारा है, और अब मैं—मुतशिवी—उसे मारूँगा! वह कल मरेगा।"

मुतशिवी की ऐसी प्रतिज्ञा तो उचित थी; पर चैडविक महाशय की समझ में यह न आया कि वह उसे पूरा कैसे करेगा, इसलिए उसने कहा—"देखो मुतशिवी, वह मगर—जैसा कि तुम कहते हो—अवश्य मरेगा; पर तुम एक फन्दा लगाओ, मैं उसे तुम्हारे लिए मार दूँगा।"

मुतशिवी—"नहीं मालिक, यह नहीं हो सकता। फन्दा लगाऊँगा और मैं स्वयं ही उसे मारूँगा। मगर ने मेरी कुटिया का दीपक बुझा दिया है, उसे ज्योतिहीन कर दिया है, अब मैं अपने हाथ से उसका जीवन-प्रदीप बुझाऊँगा। या तो यह होकर रहेगा, या फिर मैं नेमातुशा का अनुगामी होऊँगा।"

मुतशिवी के दृढ़ निश्चय को सुनकर चैडविक के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने पूछा—"आखिर तुम बदला कैसे लोगे? उसकी योजना क्या है?"

मुतशिवी—"सूर्योदय और सूर्यास्त के समय प्रतिदिन पानी के किनारे कुत्ता बाँधूँगा, और पास ही छिपकर बैठ जाऊँगा। इस तरकीब को तब तक मैं काम में लाऊँगा, जब तक मगर उसे पकड़ने न आवे। कुत्ते को पकड़कर मगर जैसे ही पानी में जायगा, मैं भी उसी के पीछे कूद पड़ूँगा और अपने खंजर से उसे मार डालूँगा।"

चैडविक ने मुतशिवी को बहुत-कुछ समझाया कि खंजर की अपेक्षा गोली कहीं अधिक कारगर है, गोली से मारने में अपनी जान का भी कोई खतरा नहीं है। खंजर की चोट पड़ी न पड़ी, और फिर पानी में मगर की शक्ति का क्या ठिकाना! यदि मगर को तनिक भी चोट लग गयी, तो रूक में उसे कुत्ते के साथ आदमी का मांस और मिलेगा। चैडविक ने मगर मारने के लिए मुतशिवी को अपनी रायफल तक देने का आग्रह किया, पर वह टस से मस न हुआ और उत्तेजित होकर उसने कहा—"यदि मैंने उसके गोली मारी, और गोली खाकर कहीं वह डूब गया, तो मुझे यह कैसे मालूम होगा कि मैंने उसे मार दिया? हाँ, यदि मेरे खंजर पर उसका खून लग जायगा और यदि मैं उसके पेट को सम्पूर्णतया चीर सकूँगा, तो मुझे ज्ञात हो जायगा कि मैंने उसका वध कर डाला।"

मुतशिवी का खंजर चौड़े फलवाला था। उसकी धार इतनी पैनी थी कि उससे मगर के पेट को फाड़ना कुछ कठिन बात न थी, पर मगर के पेट के नीचे पहुँचने की समस्या थी। चूहे यदि बिल्ली के गले में घंटी बाँध दें तो धोखाधड़ी से बिल्ली चूहों को नहीं पकड़ सकती। पर म्याऊँ का मुँह पकड़ना बड़ा कठिन है। अमुक बात होने से अमुक बात होगी—ऐसी कोरी बातें करने से कुछ नहीं होता। पानी में मगर के पीछे कूदना और उसके पेट के नीचे पहुँचकर, उसे फाड़ देना—कुछ असंभव सा था। शेर को उसकी माँद में जाकर रस्से में बाँधने के समान था। हाँ, एक बात तो

थी। मुँह में कुत्ता पकड़े हुए मगर उसे तब तक नहीं काटेगा, जब तक कि खंजर उसके न भोंका जाय। प्रशान्त महासागर स्थित साउथ सी टापू के निवासी शार्क को तो इसी प्रकार मारते हैं, पर मगर तो शार्क नहीं है, और न मुतशिवी वहाँ का निवासी। बहुत कुछ समझाये जाने पर भी मुतशिवी अपने निर्णय पर अटल बना रहा। उसके हृदय में स्वयं बदला लेने की भावना और उसके फल को निश्चित रूप से जान लेने की प्रबल इच्छा हिमालय के समान अचल और विशाल थी! वह अपने पथ से विचलित होनेवाला न था, इसलिए सायंकाल को दर्शक के रूप में चैडविक भी उसके साथ छिपकर पानी के किनारे बैठ गये।

* * *

उस सायंकाल को और अगले दिन प्रातःकाल तक कोई विशेष बात न हुई। जम्बाज़ी की सहायक क्वैंडो नदी द्वारा बनाई गयी उस झील के किनारे मुतशिवी छिपा बैठा था। उसके आगे, पानी के बिलकुल समीप कुत्ता बँधा था। मुनशिवी की आँखें उन आँखों की खोज में थीं, जिनकी ज्योति को वह बुझाना चाहता था। बगला और ढेंक किनारे पर आते थे। कुछ अपना चुगा खोदकर और कुछ पाकर उड़ जाते थे। कुत्ते ने वहाँ से छूटकर भाग जाने के लिए अनेक प्रयत्न किये। खिंचकर, सिकुड़कर, अपने बंधन को दाँत से काटकर और काँय-काँय करके वह थक गया; उसके बूते वे बन्धन न खुले। दस बारह मिनट के लिए, कुत्ता चुप हो जाता और जीभ

बाहर निकाले कातर-दृष्टि से इधर-उधर देखता, पर उसे मुक्ति न मिलती। बलि-पशु की मुक्ति जीवन से मुक्त होने पर भले ही हो, फिर वह तो नक्रदेव द्वारा बलि होने के लिए ही बाँधा गया था। मुतशिवी की साध तो तभी पूरी होती, जब उस झील का आततायी उस कुत्ते को लेकर जलमग्न हो जाता।

प्रतीक्षा और सहिष्णुता का फल प्रायः मिलता ही है। सायंकाल को नरकुल में मुतशिवी जाकर बैठा ही था कि कुत्ते का भौं-भौं भूँकना एकदम कष्टपूर्ण काँय-काँय में बदल गया। मगर कुत्ते को मुँह में दबाकर गहरे पानी में कूदा, उसकी बड़ी, काली और भयानक पूँछ से पानी का वह भाग मथ-सा गया, और झील में झाग ही झाग दिखाई देने लगे। मगर के साथ ही साथ बिजली की भाँति एक दूसरा जीव भी पानी में गिरा। वह मुतशिवी था। कितना विकट साहस! कितना दृढ़ संकल्प! उसके प्रेम और बदले की भावना को कोई नाप सकता था? चैड़विक को उसके निर्णय पर कुछ संदेह था। उनका ख़्याल था कि आवेश में आकर मुतशिवी ने लंबी-चौड़ी बातें बघार दी हैं। मगर की विकराल आकृति देखकर वह सहम जायगा और पानी में न कूदेगा। पर उसके पानी में कूद पड़ने पर चैड़विक ने चुपचाप उससे अपनी भूल के लिए मानसिक क्षमा-याचना की।

मुतशिवी मगर को मारने के लिये कूद पड़ा। प्रेमी के लिए जान देना कुछ कठिन बात नहीं है, पर चैडविक के सम्मुख प्रश्न था कि मुतशिवी अपनी स्त्री का अनुगामी बनेगा या उसके शिकारी

का शिकार करेगा। वे इसी उधेड़-बुन में थे कि थोड़ी देर में ही मगर की थूथनी पानी के बाहर निकली। उसके मुँह में कुत्ता था। मगर ने झील के दूसरे किनारे की ओर जाने की कोशिश की, पर उसकी यह गति तो ग्राह-स्वभाव के विपरीत थी, क्योंकि मगर अपने शिकार को पकड़कर उसको डुबाने की ख़ातिर नीचे पानी में बैठ जाता है। अपने शिकार को लेकर पानी में डूबकर तुरन्त ही किनारे की ओर जल से बाहर जाने का अर्थ था कि कोई अवांछनीय वस्तु उसके नैसर्गिक दुर्ग—गहरे पानी—में थी, जिससे विचलित होकर वह खुश्की की ओर जाने की चेष्टा कर रहा था। घर में जब आग लगती है, तब बाहर ही को तो भागते हैं। कभी-कभी मनुष्य तक के लिये उसके जातिवाले, वन्य-पशुओं से भी अधिक क्रूर हो जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य उनकी सूरत देखना पसंद नहीं करता। फिर वह तो मगर था। कुछ गड़बड़ हुई होगी। मुतशिवी ने अपने पैने खंजर को रक्तपान कराया होगा। मगर चाहता तो वह मुतशिवी को उसकी प्रियतमा के पास पहुँचाकर उसी के स्थान पर दफ़ना सकता था; पर उसके मुँह में तो रसगुल्ला—कुत्ता—रखा था। अपने स्वादिष्ट भोजन को उसने न छोड़ा। बहुत से लोगों को जान की अपेक्षा जीविका अधिक प्यारी होती है। तिस पर मगर को यह समझ थोड़े ही थी कि उसकी जान का गाहक कोई वहाँ गया था। कुत्ता और बकरा वह पकड़ा ही करता था। एक दिन स्त्री पकड़ ली तो क्या हुआ।

कुत्ते को मुँह में पकड़े ज्यों ही मगर पानी के धरातल पर आया और दूसरी ओर किनारे की ओर चलने लगा, त्यों ही एक निमेष के लिये वह बाहर निकला और फिर डूब गया। एक क्षण बीतने पर फिर मगर ऊपर को तड़पा और पानी के धरातल से आधा उठ गया, और अपने कठोर जबड़ों से कुत्ते को छोड़ दिया। मगर के आसपास चारों ओर का पानी रक्त-वर्ण था, मानों ख़ून के नल खोल दिये हों। मगर के बगल में मुतशिवी भी दिखाई पड़ा। मगर ने ज्यों ही कुत्ते को छोड़ा, मुतशिवी एकदम मुड़ा और किनारे पर बाहर आने के लिए प्राणपण से कोशिश करने लगा। अब उसे अपनी जान के लाले पड़े हुए थे कि कहीं मगर उस पर वार न कर बैठे, पर उसके किनारे पर आने से पूर्व ही मगर विलीयमान (गायब) हो चुका था।

* * *

"मुतशिवी, क्या तुम मगर तक पहुँच सके थे?" चैड़विक ने पूछा।

मुतशिवी—"मेरे खंजर की धार देखो। मगर के माँस के छीछड़े अब तक इस पर चिपटे हुए हैं, और तनिक झील के पानी पर दृष्टि डालो कि वह कितना लाल है।"

चैडविक—"तो क्या मगर मर जायगा?"

आवेश में आकर मुतशिवी ने कहा—"वह तो मर चुका मालिक, कल इसी समय हम लोग उसकी खाल निकालेंगे।"

*

अगले दिन सूर्यास्त से दो घंटे पूर्व मगर उलटा—पीठ के बल झील में तैर रहा था। मुतशिवी के खंजर ने उसकी स्त्री की जीवित क़ब्र को चीर डाला। डोंगियों के सहारे मुर्दा मगर किनारे पर लाया गया। नापा तो पंद्रह फुट लंबा निकला, और इस हिसाब से आयु में शायद सौ वर्ष का होगा, पन्द्रह फुट का मगर साधारण मगर नहीं होता। और छिपकली के से थूथनीवाले (Snubnosed) मगर के लिए वह ख़ासी अच्छी लंबाई है। इतने बड़े और भयंकर मगर को गहरे पानी में जाकर मारना साधारण बात नहीं है। और न इससे यह ख़याल करना चाहिए कि हर एक इस प्रकार मगर को मार सकता है या मनुष्यभक्षक मगर का मारना इतना सरल है।

मगर का पेट फाड़ा गया। भीतर से और चीज़ों के साथ स्त्री के गहने, अधगली टाँगें और केश निकले। उनको पहचाननेवाला भी वहीं था। उन्हें देखकर मुतशिवी फूट-फूटकर रोने लगा। विकृत तथा अधगले शरीर ने मुतशिवी के सम्मुख उनके सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन का चित्र खींच दिया। उसके हृदय का ज्वालामुखी धधकने लगा, और इस ज्वालामुखी के दो मुँहों (Crater) से आँसू लावा के रूप में निकलने लगे। हिचकियों से उसका शरीर काँप रहा था और अश्रु-धारा बह रही थी।

*   *   *

उन आँसुओं से उसने अपनी स्त्री को अश्रु-अंजलि दी, पर विरह का ज्वालामुखी उसके हृदय में जलता ही रहा, और वह उसके

जीवन-भर जाग्रत रहेगी। उसे केवल एक संतोष और अभिमान है कि उसने अपनी प्यारी के खून का 'बदला' खून से लिया। यह बदला था या नहीं—यह कहना कठिन है, पर मुतशिवी को उस बदले से कुछ सान्त्वना ज़रूर मिली और उसका स्नेह अपनी मृत पत्नी के प्रति और भी गाढ़ा हो गया।

नया-जीवन

श्री अब्दुल हई अब्बासी, बी. ए., एल-एल. बी.

हिन्दुस्तान की ग़रीबी को दूर करने के लिए देश के विभिन्न भागों में कोशिश की जा रही है। यह सच है कि हमारे मुल्क की ग़रीबी की भयानक तसवीर हमारे सामने होती है, जब हम शहरों और क़स्बों के बाहर देहातों में टूटी-फूटी झोंपड़ियों और सुबह से शाम तक अर्ध-नग्न, खेतों में काम करनेवाले किसानों पर नज़र डालते हैं।

यह सही है कि निरक्षरता और ग़रीबी दो ऐसे रोग हैं जिनमें हमारे देहात के रहनेवाले भाई मुब्तला हैं। इन दोनों बुराइयों के ख़िलाफ़ लड़ाई करना, सही रास्ते पर क़दम रखना है। ग्रामसुधार की आम तौर से चर्चा है। कोई कहता है कि गाँव के रास्ते और

गली-कूचे की मरम्मत में ही देहातियों का सुधार हो जायगा, कोई समझता है कि खाद के गढ़े तैयार करने और घरों में रोशनदान लगाने और गाँव की मरम्मत करने ही में ग्राम-सुधार है। कुछ काम करनेवालों का ख़याल है कि पंचायत-घर बनवा दिया जाय, ग़ल्ले के गोदाम खोल दिये जायँ तो देहात की तरक़्क़ी हो जाय। मगर हमारे देहात की बीमारी के नब्ज़ देखनेवाले हकीम और वैद्यों ने सच्चे रोग की जाँच नहीं की। क्योंकि देखने में आया है कि गाँव के गली-कूचे शहर के गली-कूचे की तरह बन गये हैं, रोशनदानों से मकानों में हवा भी आने लगी है, लेकिन गाँववाले जहाँ थे वहीं रहे। इससे यह पता चलता है कि उपर्युक्त सुधार-आंदोलन, गाँव का बाहरी-रूप बदल सकता है; लेकिन गाँव के बसनेवालों में कोई तब्दीली नहीं कर सकता। अब ऐसे नुस्ख़े की ज़रूरत है जो गाँव के निवासियों का जीवन बदल सके।

काम करनेवालों का कहना है कि ध्येय की प्राप्ति के लिए इरादा कर लेना ही बड़ा काम है। देहात के सुधार और तरक़्क़ी के काम असली माने में शुरू करने के पहले देहात में बसनेवालों के स्वभाव का गहरा अध्ययन करना चाहिए। ग्रामवासियों से बात करने पर आपको मालूम होगा कि वे अत्यन्त सुखी हैं और दुनियाँ के झंझटों से वे बिलकुल आज़ाद मालूम होंगे। मैं एक देहाती की बातचीत नीचे लिखता हूँ। यही जवाब आपको देश के हर हिस्से से सुनाई पड़ेगा।

"कहो भाई चौधरी, क्या हाल-चाल है?"

"भैया, जीव ज़िन्दा है; किसी तरह ज़िन्दगी के दिन तो काटने ही पड़ेंगे।"

"ख़ैरियत तो है चौधरी? क्यों ऐसी निराश बानी बोलते हो।"

"कुछ नहीं भैया। जीवन तो एक माया है। दुनियाँ एक सराय के समान है। जैसे-तैसे ज़िन्दगी के दिन कट ही जावेंगे।"

ये एक खाते-पीते ग्रामीण के शब्द हैं, जो देहात का ठीक चित्र पेश करते हैं। यूरोपियन इस दुनियाँ को अपना घर बनाना चाहते हैं और हिन्दुस्तानी अपने घर को सराय समझते हैं। एक अंग्रेज़ के लिए उसका घर क़िला है जिसे वह अपनी आनेवाली संतान के लिए अधिक से अधिक दृढ़ बनाना चाहता है। हिन्दुस्तानियों के लिए उसका घर चार दिन का रैन-बसेरा है। किसी ने सच कहा है कि एक बुझा हुआ और अपनी दशा पर संतुष्ट मनुष्य उन्नति की दौड़ में सदा पीछे रहता है। किसी देहाती से उसके बाल-बच्चों की आइंदा ज़िन्दगी के संबन्ध में प्रश्न कीजिये तो फ़ौरन यह जवाब देगा, "परमेश्वर मालिक है, जो क़िस्मत में होगा, होकर रहेगा।" ऊपर के इन जवाबों से आपको ग्रामीण स्वभाव का अंदाज़ा हुआ होगा। हिन्दुस्तान के देहातों की उन्नति के सवाल को ग्राम-सुधार के अलफ़ाज़ से याद करना ग़लत है। उस चीज़ का सुधार हो सकता है जो थोड़ी बहुत बिगड़ी हो; मगर जो चीज़

इस क़दर बिगड़कर ख़राब हो चुकी हो कि उसकी असली शकल पहचानी न जाती हो, उसके लिए सुधार की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसके लिए नया रूप और नया जीवन चाहिए। ग्राम-सुधार के बजाय 'जीव-सुधार' या संक्षेप में 'परिवर्तन' या 'काया-कल्प' कहा जाय तो अनुचित न होगा। चूने और ईंट से बने हुए पंचायत घर की भी एक उम्र होती है। विभाग की ओर से बनवाये गये कुएँ की जगतें भी चन्द वर्ष तक रहेंगी! मकान ही आपका सराय ठहरा तो रोशनदान की उम्र भी कम होगी, यह सोचा जा सकता है। खुलासा यह कि जब देहातवाले अपने जीवन को सुखी नहीं बनायेंगे तो ये सब चीज़ें चन्द वर्षों में मिट्टी का ढेर बनकर रह जायँगी। जीवित राष्ट्रों के गाँव में चले जाइये तो आपको हँसने-बोलने की आवाज़ सुनाई देगी। डेनमार्क और हालेण्ड के किसान रात के समय अपने घरों में बैठकर रेडियो सुनते हैं और अपने बच्चों को एक बहादुर सिपाही और स्वाभिमानी बनने की कहानी सुनाते हैं। और हमारे गाँव से अगर आप शाम को गुज़रें तो मरघट का-सा सन्नाटा नज़र आएगा, और अगर कोई दिलजला कुछ आलाप भी रहा होगा तो वह निराशा और दर्द की कहानी होगी।

हिन्दुस्तान की निराशा और अँधेरी दुनियाँ में जीवन और आशा का संदेश सिर्फ़ महात्मा गान्धी का उपदेश है। महात्माजी ने व्यावहारिक जीवन का संदेश सुनाकर काम करनेवालों के लिए रास्ता खोल दिया है। यद्यपि महात्माजी मानव-जीवन को सादे से सादा

और कम ख़र्चवाला बनाना चाहते हैं, मगर सच तो यह है कि वे मनुष्य को निर्वाण, मुक्ति और माया आदि के गोरखधन्धे से छुड़ाकर अमल और केवल अमल की दावत दे रहे हैं। उनके कहने का मतलब सिर्फ़ इतना है कि देहात में काम करनेवालों को अपनी व्यावहारिक ज़िन्दगी से देहात की दुनियाँ में इन्क़लाब पैदा करना चाहिए और गाँववालों में खुश और साफ़-सुथरा रहने के भाव पैदा करना चाहिए।

हकीम, वैद्य और डाक्टरों का कहना है कि खुश रहने और शरीर में फुर्ती रखने से तन्दुरुस्ती पर अच्छा असर पड़ता है। जब आदमी तन्दुरुस्त होगा तो उसमें काम करने की शक्ति होगी और वह अपने जीवन को अच्छे से अच्छा बनाने की कोशिश करेगा। मेरे ख़याल में ग्रामवासियों का सबसे महान मक़सद यह होना चाहिए कि देहातवालों में भी जीवन पैदा किया जाय और उनके स्वभाव इस तरह बदले जायँ कि वे अपने घर, पड़ोस और देश को सुन्दर बना सकें। आदमी का भीतरी रोग तभी अच्छा हो सकता है जब कि उसकी आत्मा खुश हो। उसी तरह देहात का सुधार तभी हो सकता है जब कि पंचायत-घर, अच्छे और पक्के कुएँ और साफ़ गली-कूचे और हवादार मकानों में रहनेवाले उन चीज़ों को अपनी समझते हों और साफ़-सुथरी ज़िन्दगी गुज़ारना चाहते हों।

सारांश यह कि सुधार और ग्रामीण उन्नति के काम करने का वक़्त अब आया है। हमारे काम करनेवाले कोशिश करें तो निराशा

आशा में बदल सकती है। सराय अब घर बन गया और घर किला बन सकता है। हर ग्रामवासी का यह कर्तव्य है कि वह अपने किले को मज़बूत बनाने के साथ-साथ उसे सजाये, सँवारे। यही सच्चे अर्थों में इन्क़लाब या जीवन-सुधार है। आपका जी चाहे आप इसे ग्राम-सुधार ही कहते जायँ, लेकिन आन्दोलन के उद्देश्य और उसकी आत्मा से मैंने आपका परिचय करा दिया।

हिन्दी माधुरी—२

कठिन शब्दार्थ

मृत्यु का भय

एकत्र होना - इकट्ठा होना

'बोअर' - आफ्रिका की एक जाति

परवरिश - पालन-पोषण

दफ़नाना - ज़मीन में गाड़ देना

रमणी - स्त्री

अधीर होना - दुखी होना

हैरान - परेशान

सिद्ध करना - साबित करना

इंग्लिस्तान की पाठशालाओं में शिक्षा

अवलोकन - देखना

बाट - रास्ता

बाट देखना - राह देखना; इंतज़ार करना

क्वचित् - शायद, बहुत कम

अवस्था - उम्र

शाही - बादशाह संबंधी

बहुधा - अक्सर

हाय तोबा - रोना-पीटना

टीका - आलोचना

कार्रवाई - जाँच-पड़ताल

आह भरना - दुख ज़ाहिर करना

मरहम-पट्टी - दवा-दारू

काफ़ूर होना - ग़ायब होना

प्रोवोस्ट - शाला का प्रधान

तहक़ीक़ात - तलाशी

जुट जाना - लग जाना

संयोगात्मक - मिल-जुलकर

मैन्यूवर - फ़ौज़ी दाँव-पेंच

पोथी-पंडित - सिर्फ़ पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करनेवाले

मच्छर

भिनभिनाना - भन-भन की आवाज़ करना

डील-डौल - आकार

भुनगा - छोटा कीड़ा

महफ़ूज़ - सुरक्षित

पिस्सू - एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा

हर्फ़ - अक्षर

शोखी - गर्व

कमीनगी - नीचता

बेडौल - भद्दा

खरी-खरी सुनाना - साफ़-साफ़ कहना

दिलेरी - हिम्मत
नाक में दम करना - परेशान करना
नमरूद - एक पुराने बादशाह का नाम
ग़रूर - घमंड
दानाई - अकलमंदी
तसल्ली - ढाढ़स, धैर्य

अकबर की शासन-व्यवस्था

मालगुज़ारी - ज़मीन का कर
दागना - जलाना
वाक़यानवीस - संवाददाता
सधना - अभ्यस्त होना
उत्कट - तीव्र
शरीयत - मुसलमानी धार्मिक क़ानून
फ़िरका - संप्रदाय
इमाम - धार्मिक नेता
मिम्बर - चबूतरा
ख़ुतबा - धार्मिक घोषणा
उलमा - विद्वान
भड़कना - चौंकना, नाराज़ होना
बलवा - झगड़ा, विद्रोह
फ़तवा - धार्मिक व्यवस्था, निर्णय
जायज़ - उचित
पानी फ़िर जाना - नष्ट हो जाना
लस्टम-पस्टम - ढीला-ढाला, घबराया
जरथुस्त्री - फारस के एक धर्माचार्य, (जरथुस्त्र के उपासक अग्निपूजक पारसी)
मुमानियत - मनाही, निषेध
सामंजस्य - समानता
तौहीद - एकेश्वरवाद, एक ईश्वर को [मानना
पथ - मार्ग
विरासत - उत्तराधिकार, पैतृक संपत्ति
फ़िरंगी - अंग्रेज़; युरोपियन
चितेरा - चित्रकार
क़लम - बात, शैली
मक़बरा - वह इमारत जिसमें किसी की लाश गाड़ी गयी हो
उल्लेखनीय - लिखने योग्य
धुना - रूई धुननेवाला (एक जाति)

आख़िरी ख़त

मियाद - अवधि
जोखिम - विपत्ति की आशंका
निहायत - बहुत
दौर - चक्कर, दिनों का फेर
कानून-दाँ - कानून जाननेवाला
ख़ाका - ढाँचा, नक्शा
अंकित - चित्रित
अन्वेषक - तलाश करनेवाला
महदूद - सीमित
पाशविकता - पशुता
दलदल - कीचड़
कन्नी काटना - बचते फिरना
भित्तियाँ - दीवारें

अथक - कभी न थकनेवाली

दुरंत - कठिन

शुद - समाप्त

बीमारियों की रोक-थाम

तालीमयाफ़्ता - शिक्षित

नुक़्तये-निगाह - दृष्टिकोण

बवा - बीमारी

नाकारा - निकम्मा; काम न करने-वाला

इंतेशार - परेशानी

मुक़र्रर - तैनात

ज़ाया - बरबाद होना

इज़हार - प्रकट होना

सर्फ़ होना - खर्च होना

अहमियत - प्रधानता, महत्व

मुतल्लिक - बारे में; संबन्ध में

जाहिल - अशिक्षित

सीलन - नमीं, तरी

सेहत - तंदुरुस्ती

महफ़ूज़ - सुरक्षित

तवज्जह - ध्यान

माउण्ट एवरेस्ट की चढ़ाई

अनुकम्पा - दया

अनुसंधान - खोज; तलाश

टेढ़ी खीर - कठिन काम

दर्रा - दो पहाड़ी के बीच का तंग रास्ता

उपत्यका - घाटी

डैटा (Data) - जानी हुई बातें

भगीरथ प्रयत्न - घोर परिश्रम

अस्वस्थ - बीमार

रेंगना - धीरे-धीरे चलना

रपटनी - चिकनी

फेंटकर - मिलाकर

देहाती बैंक

आबादी - जन-संख्या

मयस्सर - प्राप्त

ग़मी - मरनी, मृत्युशोक

मवेशी - पशु

खरीद फ़रोख्त - खरीदना-बेचना

आबपाशी - सिंचाई

मेंडबन्दी - मिट्टी से बनाया हुआ खेत का घेरा

अमल करना - व्यवहार में लाना

नस्ल - वंश, कुल

खुशहाल - सुखी, संपन्न

कमबख्ती - अभाग्य

तरस आना - रहम आना

तबाही - बरबादी

महकमा - विभाग

खुदाई का मास्टरपीस

गुनहगार - अपराधी

ज़ार ज़ार - बहुत अधिक

इबादत - प्रार्थना

करिश्मा - अद्भुत कार्य
नफ़रत - घृणा
ग़रज़ - मतलब
अजीबो-ग़रीब - अद्भुत
लुत्फ़ - मज़ा
औलाद - संतान
लक़ब - खिताब, उपाधि
धूनी रमाना - सामने आग जलाकर देह तपाने बैठना, किसी जगह पर डटकर बैठ जाना
मुजरिम - अपराधी
स्मगलर - बिना महसूल चुकाये माल ले जानेवाला
पिल पड़ना - घुस पड़ना; काम में लग जाना
बोरिया बकुचा - असबाब
नसेनी - सीढ़ी
गुम हो जाना - खो जाना
छीलना - छिलका उतारना
आँकना - अंदाज़ा लगाना, क़ीमत लगाना
व्यस्त - काम में लगा हुआ
दरदरा - मोटा भारी स्वर
आल्हा - एक प्रकार के वीर रस के गीत। (आल्हा नाम की एक पुस्तक है, जिसमें आल्हा और ऊदल की बहादुरी का वर्णन किया गया है, जिस छंद में यह पुस्तक लिखी गयी है, उसे भी आल्हा कहते हैं)
तिरपाल - मोमिया (Tarpaulin)
तरबतर - भीग जाना
मनहूसियत - उदासी
मुर्दनी - उदासी
खामोशी - चुप्पी, मौन
समाँ - नज़ारा, दृश्य
झाग - फेन
मसीह - पैग़म्बर

बदला

बपौती - पैतृक संपत्ति
कसौटी - सोना पहचानने का एक [पत्थर
मुहिम - कठिन काम, युद्ध आदि
आतंक - डर
पनघट - पानी भरने का घाट
पैठना - प्रवेश करना
कोंपल - नई और मुलायम पत्ती, किल्ली
योजना - कार्यक्रम
कारगर - उपयोगी
टस से मस न होना - अपनी प्रतिज्ञा [पर दृढ़ रहना
रूक - ऊपर से (कोसरु)
पैना - तेज़
उधेड़बुन - चिंता
थूथनी - लंबा निकला हुआ मुँह

ग्राह - मगर
ख़ुश्की - सूखापन
बूते - बल
विलीयमान - छिप जाना

नया जीवन

मुब्तिला - व्यस्त, फँसा हुआ
गल्ला - अनाज
गोदाम - भंडार (Godown)
नुस्ख़ा - निर्देश, उपाय
ख़ैरियत - कुशल
जगत - कुएँ के चारों ओर बना हुआ [चबूतरा
गोरखधंधा - उलझन
इनक़लाब - परिवर्तन, क्रान्ति
मक़सद - उद्देश्य